THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_180180
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H891.42 V81K Accession No. G.H. 3173

Author वीरसिंह

Title कवि-श्रीमाला : पंजाबी १९६२

This book should be returned on or before the date last marked below.

कवि-श्री माला

* पञ्जाबी *

कवि :

भाई वीरसिंह

सम्पादक—अनुवादक

प्रीतमसिंह पंछी

"भारत सरकार की ओर से भेंट"

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

प्रकाशक :
मोहनलाल भट्ट
मन्त्री :
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
हिन्दीनगर, वर्धा

● ● ●

Checked 1969

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रथम संस्करण—३०००
मई, १९६२
मूल्य—रु. २/-

● ● ●

मुद्रक :
मोहनलाल भट्ट
राष्ट्रभाषा प्रेस,
हिन्दीनगर, वर्धा

● ● ●

आमुख

हर्षका विषय है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा अपने कार्य कालके २५ वर्ष सन् १९६१ में पूरे कर रही है। इस उपलक्ष्यमें मनाये जानेवाले रजत-जयन्ती महोत्सवके अवसर पर सभी भारतीय भाषाओंके मान्य कवियोंका तथा उनके उत्कृष्ट काव्यका परिचय 'कवि-श्री माला' की पच्चीस पुस्तकोंमें हिन्दी-गद्यानुवाद सहित प्रकाशित करनेकी योजनाके अन्तर्गत प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष आ रहा है।

यद्यपि किसी भी भाषाके सर्वश्रेष्ठ काव्य-सर्जकका निश्चय करना एक कठिन कार्य है, फिर भी अपनी सीमाओंको ध्यानमें रखते हुए गण्यमान्य उन-उन भाषाओंके विद्वानोंकी रायसे ही चुनावका कार्य सम्पन्न किया गया है।

प्रत्येक पुस्तकके आरम्भमें जिस भाषाके कविकी रचनाओंका चयन किया गया है, उस भाषाके साहित्यका परिचय और कवि विशेषका परिचय दिया गया है। जिस भाषाके दो कवियोंका चुनाव किया गया है, उनका चुनाव करते समय सन् १९२० से पूर्वका साहित्य और १९२० से बादका साहित्य--इस तरहसे एक विभाजन-रेखा ध्यानमें रखी गई है। इसका कारण यह है कि लगभग सन् १९२० के पूर्वके तथा १९२० के बादके साहित्यमें प्रवाहित विचार-धारामें एक विशेष प्रकारका अलगाव-सा पाया जाता है।

श्री प्रीतमसिंह पंछीने प्रस्तुत पुस्तकमें संकलित साहित्यको चुनने, काव्यांशको सम्पादित तथा अनूदित कर सारी सामग्रीको इस रूपमें प्रस्तुत करनेमें सहयोग दिया है। पुस्तकमें संकलित चित्र श्री मोहनसिंह : सम्पादक, 'खालसा समाचार', अमृतसरके सौजन्यसे उपलब्ध हुआ है। संग्रहकी आवरण डिजाइनको बनवा देनेमें श्री व्ही. एन. अडारकरजी (डीन, सर जे. जे. इन्स्टीटचूट आफ अप्लाईड आर्ट, बम्बई) का उदार सहयोग मिला है, उसके लिए समिति सभीकी आभारी है।

इसके अतिरिक्त छपाई तथा अन्यान्य दृष्टियोंसे जिन-जिनका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग मिला है, उनके प्रति भी समिति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है।

आशा है, प्रस्तुत संग्रह पाठकोंको रुचिकर एवं उपयोगी प्रतीत होगा।

मन्त्री,

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

अनुक्रमणिका

पृष्ठांक

पञ्जाबी-साहित्य-परिचय [प्रारम्भसे १९२० तक] १

कवि-परिचय २१

काव्य-सञ्चय ३३

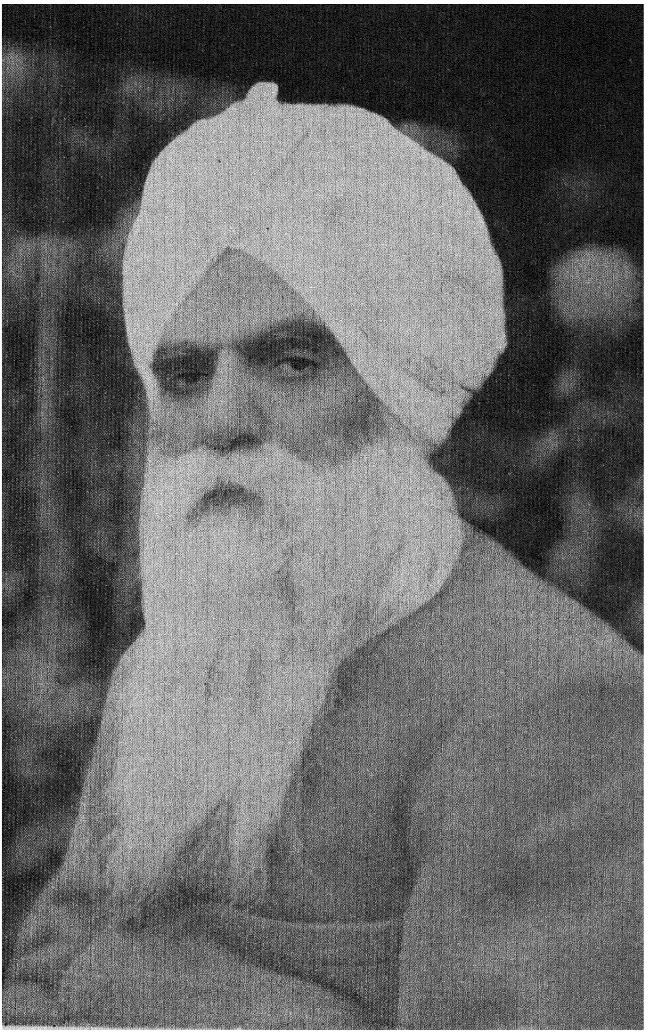

भाई वीरसिंह

[फोटो श्री मोहनसिंह : सम्पादक, 'खालसा समाचार', अमृतसरके सौजन्यसे प्राप्त]

पञ्जाबी साहित्य परिचय

[प्रारम्भसे १९२० तक]

पञ्जाबी भाषा
और
उसका साहित्य

• • •

प्रारम्भिक काल (ई. सन् ८००–१४५० तक) :

इस बातसे सभी विद्वान् सहमत हैं कि पञ्जाबी साहित्य अपने अविकसित रूपमें गुरु नानकदेवसे पूर्व जन्म ले चुका था, किन्तु जो कविता उस समय रची गई, उसमें हिन्दी, फारसी तथा भिन्न-भिन्न प्रदेशोंके शब्दोंकी इतनी भरमार थी कि उसकी भाषाको हम एक खिचड़ी भाषा कह सकते हैं।

ऐसे कवियोंमें गोरखनाथ (ई. सन् ९४०–१०३१), चरपट (ई. सन्८९०–९९०), अमीर खुसरो (ई. सन् १२५३–१३२५), तुगलक शाह और खुसरो खाँ, फरीद शकर गंज आदि प्रमुख कवि थे। इनके अलावा कबीर (ई. सन् १३९८–१५१६), रविदास (कबीरके समकालीन) और नामदेव (चौदहवीं सदी) की गणना भी इन्हीं कवियोंमें की जा सकती है। उस समय उत्तर-भारतमें एक ऐसी सन्त-भाषाका प्रादुर्भाव हो चुका था जिसने भिन्न-भिन्न प्रदेशोंके कवियोंको एक सूत्रमें बाँध दिया था। कबीर, नामदेव और रविदासका पञ्जाबसे कोई सम्बन्ध नहीं था, किन्तु फिर भी उनकी रचनाओंमें उस समयकी प्रचलित पञ्जाबीका प्रभाव स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होता है। इन तीनों कवियोंकी–कबीर, नामदेव और रविदास–कविताएँ गुरु-ग्रन्थ साहबमें सम्मिलित हैं।

भाषाकी इस समानताका कारण यह था कि पञ्जाबके गोरखपन्थी साधु तथा बाबा फरीदके शिष्यगण दूर-दूरके प्रदेशोंमें फैले हुए थे। गोरखपन्थी साधु तो समस्त भारतमें फैले हुए थे।

बाबा फरीद शकर गंज (ई. सन् ११७३–१२६६) सूफी साहित्यके प्रवर्त्तक माने जाते हैं। सूफी फकीर भारतमे मुसलमानोके आगमनके साथ ही आए थे। आरम्भमें इनका उद्देश्य इस्लामका प्रचार था। सूफी मत हिन्दुओंके भक्ति-मार्ग तथा वेदान्तका मुसलमानी रूप है। इस मतका जन्म इस्लामके साथ ही हो गया था।

फरीद शकर गंज सूफी फकीरोंमे अग्रणी थे। इनके श्लोक गुरु ग्रन्थ साहबमें सम्मिलित है। उनमे परमात्माका भय, रोजा-नमाज, नरकका भय, संसारसे वैराग्य तथा जप-तप द्वारा साधनाकी प्रेरणा दी गई है। भाषा सीधी-सादी, सरल तथा घरेलू उपमाओंसे ओत-प्रोत है। यद्यपि फरीद निराशावादी कवि है, किन्तु उनकी कवितामें यत्र-तत्र आशावादी तत्व भी मौजूद हैं।

पूर्वार्द्ध मुगल-काल (ई. सन् १४५०–१७०० तक) :

गुरु नानकदेवसे पूर्वके साहित्यकी चर्चा हम कर चुके हैं, किन्तु पञ्जाबी साहित्यका उत्तरोत्तर विकास सिख गुरुओंके समय हुआ, भाषा तथा भावोंको नया रूप मिला। इसी समय सर्वप्रथम गद्यकी भी रचना आरम्भ हुई। यह साहित्य तीन श्रेणियोंमें विभक्त था—सूफी-साहित्य, सिख-साहित्य तथा रोमाण्टिक-साहित्य। इस समय भक्ति-आन्दोलन चढ़ावपर था। इस आन्दोलनके प्रवर्तक तथा प्रचारक बनारसमें रामानन्द, रविदास तथा कबीर आदि थे। बंगालमें चण्डीदास और चैतन्य महाप्रभु, राजस्थानमे मीराबाई और दादू, महाराष्ट्रमें नामदेव तथा तुकाराम और पञ्जाबमे सिख गुरु थे।

सिख गुरु जहाँ भक्ति-आन्दोलनके अभिन्न अंग थे, वहीं इसके कुछ दोषोंको भी मिटाना चाहते थे। शिव तथा योगकी उपासना, करामातोंका लोभ और आडम्बरका सिख गुरुओंने डटकर विरोध किया। उन्होंने परमात्माकी भक्ति हठपूर्वक और मनको मारकर नहीं, वरन् इसी दुनियामें रहते हुए शुभ-कर्मों द्वारा करनेका पाठ पढ़ाया। वे समस्त प्रकृति, धरती, मनुष्य, जंगल, जल, अग्नि, तारे तथा आकाशको परमात्माकी आरती उतारते हुए देखते थे। इनसे अपने आपको पृथक् समझकर जो भक्तिका उपदेश देते थे उनका वे विरोध करते थे।

सिख धर्मके प्रवर्तक गुरु नानकदेव (ई. सन् १४६९–१५३९) का कार्य-क्षेत्र बड़ा विशाल था। उन्होंने लंकासे कश्मीर, असमसे पेशावर, काबुल, मक्का मदीना और बगदाद तक अपने धर्मका प्रचार किया। हिन्दू-मुसलमान दोनों उनके लिए समान थे। वे उस नई पञ्जाबी कविताके जन्मदाता थे, जो 'सन्त-भाखा'

(पञ्जाबी-हिन्दी मिश्रित भाषा) में लिखी जाती थी। आपका ज्ञान विशाल था। धर्म, दर्शन, विज्ञान, पुराण तथा प्राकृतिक वर्णनके उदाहरण आपकी कवितामें मिलते हैं। घरेलू उपमाएँ, सरल और सादगी-भरा वर्णन, भावना तथा संगीत आपकी कविताके विशेष अंग हैं। 'जपुजी साहब' आपकी असाधारण काव्य-प्रतिभाका श्रेष्ठतम नमूना है। गुरु नानककी कवितामें सरल भाषा द्वारा गहरे विचारोंके व्यक्त करनेकी खूबी विद्यमान है। कवितामें संयम तथा भाषाका अधिकार इन्हें एक महान् कविके रूपमें हमारे सामने ला खड़ा करता है। इनके प्रत्येक वाक्यमें एक अटल सचाई मिलती है और वे वाक्य एक मुहावरेकी भाँति कण्ठस्थ हो जाते हैं। भक्ति-आन्दोलनके ये पहले ऐसे कवि हैं, जिन्होंने आत्म-मण्डलमें विचरनेके साथ-साथ अपने वर्तमान जीवनको बनाने-सँवारनेकी प्रेरणा दी। 'बाबर वाणी' में वे एक पीड़ाका अनुभव करते हुए बाबरके आक्रमण तथा अत्याचारके विरुद्ध अपनी आवाज ऊँची करते हैं :—

"जिन सिरि सोहनि पहीयाँ, भांगी पाय संधूर।
से सिर कती मुनियन, गल विच आवै धूड़ि।
महिला अन्दर होंदियां, हुणि बहणि न मिलनि हदूरि।
जदहु सीआं नीआहियां, लाड़े सोहनि पासि।
हीड लि चढ़ि आईया, दन्द खंड कीते रासि।
उपरहु पाणी वारिए, झलै झिमकण पासि।"

गुरु नानक सिर्फ समाधि लगाते और सिर्फ माला ही नहीं जपते रहे, वे अपने इर्द-गिर्द आँखें खोलकर देखते हैं तो उन्हें दिखाई देता है अत्याचार, जबरदस्ती 'कन्या-दान', लाज-धर्मका लोप और झूठका चारों ओर बोल-बाला। लेकिन गुरु नानकका देश-प्रेम सिर्फ किसी एक जाति या धर्म तक सीमित नहीं है। हिन्दू-मुसलमान दोनोंपर हो रहे अत्याचारोंसे उनकी आत्मा कुलबुला उठती है। ये हिन्दुओंकी गिरावटका मूल कारण उनकी वर्जनशील मनोवृत्तिको समझते हैं। कुछ राजा कसाई हैं जो भारत-जैसे देशको मिट्टीमें मिला रहे हैं। लोगोंमें वह पुराना चाल-चलन और रहन-सहन भी नहीं रह गया। वे मुर्दोंकी भाँति झुककर चलते हैं; परायी भाषा बोलते हैं; परायी पोशाक पहनते हैं। फिर ऐसे नपुंसकोंकी दुर्दशा क्यों न हो। यह है उनकी अपने देशवासियोंकी गिरावटकी समीक्षा, और देशमें वर्तमान राजनैतिक ढाँचेपर टीका तथा अत्याचारके विरुद्ध आह्वान।

इस देशकी मिट्टी, इसके रङ्गीन मौसम तथा प्राकृतिक छटाने गुरु नानकको प्रकृतिका महान् चितेरा बना दिया है। इन्होंने मनुष्य मात्रके एक-साथ बैठने तथा एक-दूसरेके काम आनेका जो उपदेश दिया है वह इसी जन्मका सुधार करनेकी ओर एक सङ्केत है। इन्होंने हँसते-खेलते, खाते-पीते, कर्तव्य-निष्ठ बनकर परमात्माकी उपासनाका मार्ग बताया है।

गुरु नानककी अधिकतर कविता गीति-रूपमें है। इनकी कवितामें सब रस मौजूद हैं। उपयुक्त शब्दोंका चयन, वातावरण तथा अलङ्कार कविताके ऐसे जड़ाऊ मोती हैं, जिन्हें इन्होंने बड़ी सुघड़ता और कौशलके साथ अपने गीतोंमें जड़ा है।

दूसरे गुरु अंगददेव (ई. सन् १५०४–१५५२) की बहुत थोड़ी रचनाएँ मिलती हैं। इन्होंने सिर्फ श्लोक लिखे हैं। इनकी कविताका एक ही विषय है कि सेवकको गुरुके साथ कैसे प्रीति निभानी चाहिए। आपकी कविता सरल है—आडम्बरसे कोसों दूर।

गुरु अमरदास (ई. सन् १४७९–१५७४) अपनी कवितामें मनुष्य-मात्रकी एकता तथा गुरु वाणीकी अटल सचाईका उपदेश देते हैं। छूत-छात, जात-पाँत, सती-प्रथा आदि बुराइयोंके विरुद्ध आपने जोरदार आवाज उठाई है। गुरु नानककी भाँति आपकी कविता भी विविधतासे परिपूर्ण है।

गुरु रामदास (ई. सन् १५३४–१५८१) की वाणीमें सिर्फ प्रेम-भावना है। गुरुके प्रति श्रद्धा और प्रेमका वर्णन आप बड़ी मिठासके साथ करते है। इनकी कविता के वाक्य साधारणतः लम्बे होते है, किन्तु उनमें एक लय होती है, जो हृदयको मुग्ध कर देती है। गुरु रामदास प्रीतिके कवि है। ये मनुष्य-मात्रको परमात्माके सङ्ग लौ लगानेकी प्रेरणा देते हैं।

गुरु अर्जुनदेव (ई. सन् १५६३–१६०९) की वाणीका संग्रह सारे गुरुओंसे भिन्न है। इनकी कविताकी भाषा, विषय, लय, ताल आदिमें विविधता पाई जाती है। आपकी भाषामें पञ्जाबके सभी प्रदेशोंका प्रभाव स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होता है। इनकी भाषामें संस्कृतके अलावा फारसी, अरबी, सिन्धी तथा राजस्थानी शब्दोंकी भरमार है। जहाँ गुरु नानकदेवने वर्णनमें संयमसे काम लिया है, वहाँ आपकी कवितामें विस्तार बहुत है। ज्ञान और प्रेमके विषयपर ही आपने अपने काव्यकी आधार-शिला रखी है।

भाई गुरदास (ई. सन् १५५८–१६३७) चौथे गुरु रामदासके भतीजे थे। संस्कृत, फारसी, हिन्दीके आप प्रकाण्ड पण्डित थे। गुरु अर्जुनदेवने जब गुरु-ग्रन्थ साहबका संग्रह किया तो उसके लिखनेका भार आप पर सौंपा। आपने पञ्जाबीमें उनतालीस 'वार'* रचकर पञ्जाबी भाषा तथा काव्यके विकासमें अपूर्व योगदान दिया है। आपने गुरु और शिष्यकी प्रीति, सिख धर्मकी महिमा, सेवा तथा विनम्रताके ऊपर लिखा है। आपकी कवितामें भिन्न-भिन्न धर्मोका पुराण-सम्बन्धी और प्रकृतिका ज्ञान यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है। कवितामें बौद्धिकताके चमत्कार अधिक है, भाव-प्रधानता कम है। इनके वर्णनमें संयम है।

---

* एक छन्द, जिसमें वीर-गाथाएँ लिखी जाती हैं।

गुरु गोविन्दसिंहने (ई. सन् १६६६–१७०८) पञ्जाबीमें बहुत कम रचना की है। सिर्फ 'चण्डी दी वार' तथा कुछ श्लोक उनके पञ्जाबी भाषामें लिखे मिलते हैं। आपका बाकी सारा साहित्य ब्रजभाषा तथा प्राचीन हिन्दीमें है, जिसमें फारसीका रङ्ग भी मिला हुआ है।

'चण्डी दी वार' एक वीररस-प्रधान काव्य है। इसमें दुर्गादेवी और दैत्योंके युद्धकी कथा है। यह एक प्रभावशाली रचना है, जिसे पढ़कर लहूमें एक उबाल आ जाता है और ऐसा अनुभव होने लगता है मानो पढ़नेवाला स्वयं युद्ध-क्षेत्रमें खड़ा सब देख रहा हो।

गद्यका रूप :

पञ्जाबीमें कविताके विकासके साथ-साथ गद्यका भी जन्म हुआ। प्रारम्भिक कालमें महापुरुषोंकी जन्म-कथाएँ, गोष्ठियाँ तथा धार्मिक पुस्तकोंकी टीकाएँ लिखी गईं। गुरु नानककी पहली जन्म-साखी (कथा) भाई बाले ने जो गुरु नानकका निजी सेवक था, दूसरे सिख गुरु अंगददेवसे लिखवाई। इस साखीके कई छपे-अनछपे संस्करण मिलते हैं। पर इसकी भाषा आजकी भाषाके इतनी निकट है कि इसके प्राचीन होनेमें सन्देह उत्पन्न होता है। सम्भव है कि लगभग तीन सौ वर्ष प्राचीन भाई बालेकी जन्म-साखीमें किसी श्रद्धालु सिख ने मिलावट कर दी हो। इसके लिखे जानेकी तिथि सम्वत् १५९७ वैशाख सुदी पञ्चमी है।

जन्म-साखीका एक संस्करण 'विलायत वाली जन्म-साखी' कहलाता है। यह कालब्रुक साहब ने ईस्ट इण्डिया कम्पनीको भेंट की थी। इसके कुछ शब्दोंको छोड़कर शेष सारी कथाकी शैली भाई बालेकी जन्म-साखीके साथ मेल खाती है। इस विलायती संस्करणके इन शब्दोंसे "बोलो भाईजी गुरूजीकी फतह होई" यह सिद्ध होता है कि यह संस्करण गुरु गोविन्दसिंहके समयकी किसी प्राचीन पाण्डुलिपिसे नकल करके तैयार किया गया होगा, क्योंकि "वाह गुरूजीकी फतह" गुरु गोविन्दसिंहके समय ही प्रचलित था। इस जन्म-साखीमें संयमपूर्ण मिठास और सरलता-भरा वर्णन एक अनूठा रस पैदा करता है।

जन्म-साखियों (कथाओं) के साथ-साथ गुरु नानककी भिन्न-भिन्न स्थानों पर हुई गोष्ठियाँ भी लेखकों द्वारा लिखी गई मिलती हैं। इन गोष्ठियोंकी भाषा खिचड़ी भाषा है। इनके लेखकोंको व्याकरणका ज्ञान नहीं है। पर हाजरनामा, दाराशिकोह और बाबालालकी गोष्ठी चुस्त भाषा, रहस्यमय विचार और संयमित वर्णनके अद्वितीय उदाहरण हैं।

सूफी तथा भक्ति-मार्गकी कविता :

सूफी मार्ग : सूफी मतके सम्बन्धमें हम बता आए है कि इस मतका जन्म भारतमें मुसलमानोके आगमनके साथ-साथ हुआ। प्रारम्भमें यह मत सिर्फ इस्लामके प्रचार तक सीमित था। पञ्जाबी भाषामें इस मतके पहले कवि शेख फरीद थे। आगे चलकर जब इस्लाम और हिन्दू धर्मका परस्पर मेल बढ़ा, तो यहाँके रीति-रिवाज तथा धर्मोंका सूफी फकीरों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। बौद्ध धर्म, वेदान्त और सिख धर्मने सूफी मतपर गहरा प्रभाव डाला। इस मतके विकासकी यह दूसरी सीढ़ी थी। न केवल सूफी कवियोंके विचारोंमें एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया, वरन् उनके समूचे काव्यमें एक स्वदेशी रंग आ गया। सूफी कवियोंका काव्य निजी अनुभवों, पीड़ाओंसे उत्प्रेरित था।

शाह हुसैन (ई.सन् १५३८–१५९९) लाहौरके रहनेवाले थे। ये प्रसिद्ध करामाती फकीर थे। एक किम्वदन्ती है कि इनकी मित्रता एक हिन्दू लड़के माधोलालके साथ हो गई, जो इश्क की हद तक पहुँच गई थी। इसलिए इनका नाम माधोलाल हुसैन प्रसिद्ध हुआ। ये अकबर और गुरु अर्जुनदेवसे भी मिले थे। सङ्गीत और नृत्यका इन्हें बेहद शौक था। लाहौरके शालीमार बागके पास इनकी मजार है।

शाह हुसैन सूफी विचार-धाराके प्रथम कवि थे। इनकी "काफ़ियाँ"* प्रसिद्ध हैं। इनकी कविताके विषय हैं–विछोह, प्रीति तथा वैराग्य। जो सङ्गीत और माधुर्य इनकी कवितामें है, वह पञ्जाबीके अन्य किसी सूफी कविकी कवितामें नहीं मिलता।

फरीद जहाँ अपने धर्मके कट्टर अनुयायी थे, वहाँ शाह हुसैन अद्वैतवादी सूफी थे। इसीलिए इनकी कविता संकीर्णताकी परिधिके बाहर है। किसी भी धार्मिक बन्धनकी कैदमें ये नहीं हैं।

सुलतान बाहूने (ई. सन् १६२९–१६९०) मनुष्य और परमात्माकी एकरूपताके व्यक्त करनेमें कमाल किया है। इनकी कवितामें शाह हुसैन जैसी पीड़ा नहीं है, वरन् सादा और जोरदार वर्णन है। भाषा केन्द्रीय पञ्जाबी है, पर फारसीके प्रभावने उसे और भी शक्तिशाली बना दिया है। सुलतान बाहूने स्वर्ग-नरक, विद्या-बुद्धि तथा हरेक प्रकारके धार्मिक बन्धनोंके प्रति उदासीनता प्रकट की है। आपने भीतर देखनेकी प्रेरणा दी है।

शाह शरफ (ई. सन् १७२४) ने अपने आपको मारकर, यन्त्रणाएँ झेलकर प्रेम-प्याला पीनेका उपदेश दिया है। इनकी वर्णन-शैली सीधी-सादी और भाषा ठेठ है।

---

* एक छन्द।

भक्ति-मार्ग : मुसलमान सूफी कवियोंके अलावा इस समय अनेक हिन्दी-कवियोंने भी निर्गुण-सगुण और शब्द-योगरूपी भक्ति-रसको पञ्जाबी कवितामें व्यक्त किया। इन कवियोंने राम-कृष्ण-लीला, वेदान्त, जीवनकी अस्थिरता और भक्ति द्वारा जीवनको सार्थक बनानेकी भावनाको गहराईके साथ व्यक्त किया है। इनकी नीतिमय कविता मीठी शब्दावली, ठेठ केन्द्रीय भाषा लिए हुए है। इस कवितापर गुरु नानक, मीराबाई और शाह हुसैनके प्रभावकी छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

भक्ति-मार्गके प्रसिद्ध भक्त-कवि काहना गुरु अर्जुनदेवके समकालीन थे। इन्होंने सिख और सूफी कवियोंकी भावनाओं, सङ्गीत तथा शब्दावलीको अद्वैत वेदान्तके प्रचारके लिए अपनी कवितामें ढाला।

इनके अलावा शाहजहाँके समकालीन वलीराम और बाबा सुन्दर भी इस धाराके अच्छे कवि थे। बाबा सुन्दरकी 'सद रामकली' गुरु-ग्रन्थ साहबमें संगृहीत है। इस धाराके कवियोंकी कुछ व्यंग्यात्मक रचनाएँ भी मिलती हैं। यह कविता मस्ती और फक्कड़पनकी कविता है, जिसे लोगोंने साधु-वाणी समझकर कण्ठस्थ कर लिया था।

कवि सुथरा शाह सिखोंके सातवें गुरु हरिगोविन्दके समकालीन तथा सेवक थे। सुथरा शाहका सम्प्रदाय भी अब तक चला आ रहा है। इनकी कविताका उद्देश्य नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा देना था।

जल्हन दूसरे व्यंग्यात्मक कवि थे। ये सुथरा शाहके समकालीन थे। इनकी कविताका विषय संसारकी नश्वरता, वैराग्य, आत्म-ताप आदि है। इनके व्यंग्यसे भरे वर्णन पढ़कर मन प्रफुल्ल हो उठता है।

रोमाण्टिक कविता :

इस समय पञ्जाबीमें मनुष्यके सांसारिक प्रेमको लेकर कविताकी रचना प्रारम्भ हुई। इसकी प्रेरणा पञ्जाबकी वे प्रणय-गाथाएँ थीं जो पञ्जाबकी प्रेम-भीगी आत्मापर छाई हुई थीं। सर्वप्रथम इस कविताका रङ्ग घरेलू तथा यथार्थवादी था, पर धीरे-धीरे इसपर फारसी उपमाओं और शब्दोंका रङ्ग चढ़ता गया। रोमाण्टिक साहित्य धार्मिक साहित्यके बाद सबसे अधिक रचा गया। पञ्जाबके प्राकृतिक तथा रङ्गीन वातावरणने इसे प्रेरणा दी। प्रकृति और मानवी प्रेमकी गाथाओंके समन्वयसे यह साहित्य और अधिक चमक उठा।

'हीर रांझा', 'सस्सी पुन्नूं' और 'मिरजा साहबां' की महान प्रेम-गाथाओंको लेकर ही इस समयके रोमाण्टिक साहित्यकी रचना हुई।

'हीर रांझा' की प्रणय-गाथाको कविताके सूत्रमें बाँधने वाला सबसे पहला कवि दामोदर था। 'हीर रांझा' की कहानी संक्षपमें इस प्रकार है :—

रांझा तख्त हजारेके खाते-पीते परिवारमें सबसे छोटा लड़का था। वह बड़े लाड़-प्यारसे पला था। जब पिताकी मृत्यु हो गई तो भाइयों और भाभियोंने उसके साथ दुर्व्यवहार करना शुरू कर दिया। वह, रूठकर घरसे निकल गया। झन्गासयालके एक सरदार चूचककी बेटी हीरसे उसकी चिनाब दरियाको पार करते समय, नाटकीय ढङ्गसे मुलाकात हुई। हीरका अनुपम सौन्दर्य देखते ही रांझा उसपर आसक्त हो गया। रांझा भी कोई कम सुन्दर नहीं था। हीर भी उसे देखते ही निहाल हो गई। हीरके पिता चूचकको अपने ढोर चरानेके लिए एक चरवाहेकी जरूरत थी। पितासे कहकर हीरने रांझाको अपने घर पर नौकर रखवा दिया।

धीरे-धीरे दोनोंका प्रेम बढ़ा। हीर जङ्गलमें जाकर रांझासे मिलती। हीरके चाचा कैदोने दोनोंका पीछा किया। उनके प्यारका रहस्य सारे गाँवके आगे प्रकट कर दिया। परिणाम स्वरूप हीरको रङ्गपुरके खेड़े सरदार विवाह कर ले गए। रांझा योगीका वेष बनाकर रङ्गपुर गया। हीरकी ननद सहितीकी सहायतासे दोनों प्रेमी भाग गए। पीछा करनेपर पकड़े गए और काजीके सामने पेश किए गए। काजीने रांझा योगीके कुछ चमत्कारोंसे भयभीत होकर हीर उसे ही सौंप दी।

दामोदर अकबरका समकालीन और झन्गाके इलाकेका रहने वाला था। इसकी भाषामें स्थानीय रङ्ग खूब उभरा है। वह गाँवका साधारण दुकानदार या पटवारी था। उसके इस काव्यमें हीर रांझा, चूचक, सैदा काजी, सहती आदिका चरित्र-चित्रण बड़ा सुन्दर हुआ है। समूचे काव्यमें नाटकीय रङ्ग है। सिख विचार-धाराका प्रभाव भी दामोदरने ग्रहण किया है और उसके काव्यमें उस समयकी संस्कृतिका सजीव-चित्र मिलता है। हिन्दू-मुसलमानोंके सामाजिक रीति-रिवाजोंमें बड़ी समानता दिखाई पड़ती है। हीरके विवाहके समय एक ब्राह्मण भी रस्म अदा करता है और काजी निकाह भी पढ़वाता है। सगाई करनेके लिए ब्राह्मण तथा मुसलमान दोनों मिलकर जाते हैं।

दामोदरके समकालीन कवि पीलूने 'मिर्जा साहबां' की प्रणय-गाथाको कविताका रूप दिया है। वर्णन साधारण है, किन्तु कथाकी नवीनता, सङ्गीतके मन-भाते स्वर, भावनाओंकी बाढ़ पीलूके इस काव्यको ऊँचा उठानेमें सहायता देती है। पीलूके काव्यका रोमाण्टिक कवितामें एक विशेष स्थान है।

'मिर्जा-साहबाँ' की कथा इस प्रकार है :—मिर्जा रावी नदीके किनारे दानाबादका रहनेवाला था। साहबां झन्गासयालके रवीवेखाँकी (मिर्जाके मामाकी) बेटी थी। मिर्जाके बापकी मृत्यु हो जानेपर माँ उसे अपने मायके ले गई। मस्जिदमें पढ़नेके लिए वह जाने लगा। साहबां भी वहाँ पढ़ती थी। दोनोंमें प्रेमका अंकुर फूटा। पता चलनेपर मिर्जाको मामाके घरसे निकलना पड़ा और उधर साहबांके विवाहकी तैयारी कर ली गई। साहबांने विवाहसे कुछ दिन पूर्व कम्मू ब्राह्मणके हाथ मिर्जाको सन्देश भेजा कि मुझे भगाकर ले जा। मिर्जा विवाह वाले

दिन अपनी घोड़ीपर सवार होकर आया और साहबांको भगा ले गया। पर आगे भावीको कुछ और ही मंजूर था। साहबांके भाइयोंने पीछा किया। मिर्जा एक पेड़के नीचे आराम कर रहा था। शत्रुको सिरपर आया देखकर साहबां घबरा गई। उसने सोचा कि मिर्जा आँख खुलतेही उसके भाइयोके साथ भिड़ जायगा और उन्हें मार डालेगा। साहबांने अपने भाइयोंकी जान बचानेके लिए मिर्जाके तीरोंका तरकश पेड़ पर टाँग दिया। इस तरह मिर्जा निहत्था मारा गया। किम्वदन्ती है कि अपने प्रेमीकी मृत्युके पश्चात् साहबांने भी आत्म-हत्या कर ली।

पीलूने 'मिर्जा साहबां' में प्रेम कुछ अजीब ढङ्गसे पेश किया है। इसकी कथा अस्वाभाविक लगती है। एक प्रेमिका अपने प्रेमीको स्वयं ही मौतके मुँहमें धकेल देती है। प्रेमीसे भाई उसे प्रिय हैं और फिर मिर्जाकी मृत्युके पश्चात् एक दार्शनिककी भाँति कहती है :—"मिर्जे, बड़े-बड़े पीर-पैगम्बर गर गए, तू किसका जाया है।" कथाकी अस्वाभाविकतासे स्पष्ट है कि कविको मानव-चरित्रका अल्प ज्ञान है। वह मनुष्यको भावीके खिलौनेके रूपमें पेश करता है।

दामोदर और पीलूके अलावा इस दौरके दो और रोमाण्टिक कवि हुए है—हाफिज बरखुदार और अहमद। दोनों कवियोंने पञ्जाबकी बहु-प्रचलित प्रणय-गाथाको छन्दोंमें बाँधा है। बरखुदारने 'सस्सी पुन्नूं', 'मिर्जा साहबां' और 'यूसफ जुलैखाँ' के किस्से लिखे और अहमदने 'हीर-रांझा'की कहानीको बैत छन्दमें वर्णनात्मक शैलीमें लिखकर एक नया प्रयोग किया है। अहमदके लगभग सवा सौ साल बाद वारिस शाहने इसी 'बैत' छन्दमें अपने महान काव्य "हीर" की रचना करके अमर कीर्ति अर्जित की।

उत्तरार्द्ध मुगल-काल—पद्य (ई. सन् १७००–१८०० तक) :

औरङ्गजेबकी मृत्युके पश्चात् मुगल साम्राज्य काफी कमजोर पड़ गया। मराठों और सिखोंने अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। अहमदशाह अब्दालीके आक्रमणके अनुभवोंने सारे देशमें तहलका मचा दिया था। जो शान्तिपूर्ण वातावरण पहले पाँच सिख गुरुओंके साहित्य-निर्माणके लिए मिला था, वह खत्म हो चुका था। इसलिए सिख साहित्यका विकास रुक गया। राजनैतिक संघर्षने सिख सम्प्रदायका ध्यान साहित्य-निर्माणकी ओर नहीं जाने दिया। पर सूफी कवि, साहित्यके निर्माणमें जुटे ही रहे। इस समयका अधिकतर साहित्य रोमाण्टिक साहित्य है।

इस कालके प्रसिद्ध सूफी कवि बुल्लेशाह (ई. सन् १६८०–१७५२), अलीहैदर (ई. सन् १६९०–१७८५) और वजीद हुए हैं। बुल्लेशाह शाह हुसैनकी भाँति अद्वैतवादी सूफी थे। इन्होंने परमात्मा, जीव तथा आत्माकी एकताके गीत गाए हैं। बुल्लेशाहकी धारणा थी कि परमात्माकी प्राप्तिका एकमात्र मार्ग प्रेम है। मनुष्य परमात्मासे भयभीत न हो, उसे अपना प्रियतम समझकर कुर्बान हो जाए।

तप करे, ज्ञानकी प्राप्ति करे और मस्तीमें झूमता रहे। हृदयको ऐसा स्वच्छ बना ले कि उसमें ब्रह्म दृष्टिगोचर होने लगे अथवा स्वयं ही ब्रह्म-रूप हो जाए।

अली हैदर और वजीदमें सूफी मतके आधारभूत सिद्धान्तोंकी समानताके अतिरिक्त भिन्नता यह है कि अली हैदर गम्भीर कवि है और वजीद हल्के व्यंग्यात्मक ढङ्गसे अपनी बात कहते हैं। इन सूफी कवियोंके पश्चात् रोमाण्टिक कविताका दूसरा दौर प्रारम्भ हुआ। मुकबलने 'हीर-रांझा' का किस्सा बैत छन्दमें लिखा। वह अन्धा था। मुकबलके वर्णनमें सादगी, आकर्षण तथा नाटकीयता है। उसने कहानीपर जोर दिया है, चरित्र-चित्रणपर नहीं। कविने पञ्जाबी मुहावरों तथा अलङ्कारोंको बड़ी कारीगरीसे कवितामे जड़ा है। 'हीर-रांझा' का किस्सा लिखनेसे पूर्व मुकबलने हजरत मुहम्मदके नातियों हसन हुसैनके कर्बलाके मैदानमें हुए बलिदान सम्बन्धी एक "जंग नामा" भी लिखा था।

इस रोमाण्टिक दौरके दूसरे कवि वारसशाह (ई. सन् १७३०–१७९०) ने पञ्जाबी कविताको एक नई दिशा प्रदान की। वारसका जन्म जण्डियाला शेरखान शेखूपुर (पश्चिमी पञ्जाब) में हुआ था। इन्होंने थोड़ी बहुत शिक्षा मस्जिदमें हासिल की। कुछ अर्सेतक ढोर-डङ्गर चराए। जवानीमें भाइयोंके साथ रुठकर 'कसूर' आ गए और सय्यद गुलाम मुहई उलकदीन मखदूमके मुरीद बन गए। यहाँ आपने कुरान शरीफकी तालीम हासिल की।

किम्वदन्ती है कि बुल्लेशाह वारसशाहका सहपाठी थे। 'कसूर'से वारसशाह 'पाकपटन' चले गए। कुछ दिन यहाँ रहकर वे 'उट्ठे जाहिद' जाकर रहने लगे। अब तक वारसशाह काफी अनुभवी हो चुके थे। यहाँ उन्हें एक नया अनुभव हुआ। वारसशाह एक हिन्दू स्त्री भागभरीसे प्रेम करने लगे थे, किन्तु उन्हें निराशाका ही मुँह देखना पड़ा। भागभरीके भाइयोंने वारसशाहको बुरी तरह पीटकर वहाँसे भगा दिया। वे फिर माण्टगोमरी जिलेके मलकाना हांस स्थानपर आकर रहने लगे। यहाँ वारसशाहने अपने असफल प्रेमकी घोर निराशामें डूबकर 'हीर' महाकाव्यकी रचना की।

इनके पूर्व 'हीर-रांझा'की प्रणय-गाथाको पञ्जाबीमें तीन बार लिखा जा चुका था। वारसशाहकी कथा-वस्तु तो वही पुरानी थी, मगर इन्होंने उसमें प्राण फूँककर उसे नया रङ्ग दे दिया। नाटकीयता, कथाका विस्तार और चरित्र-चित्रणकी खूबियोंने इस महाकाव्यको पूर्व-रचित काव्योंसे श्रेष्ठ बना दिया। यह एक ऐसा दुःखान्त महाकाव्य था, जिसमें वारसशाहने अपनी सारी पीड़ा उँडेल दी। मनुष्यके मनकी बारीकियोंका चित्रण करनेमें ये बे-जोड़ थे। प्रेम-पीड़ा कविके रोम-रोममें रच-पच चुकी थी।

वारसशाहसे पूर्व कवियोंका कथा-वर्णन कुछ अस्वाभाविक ढङ्गका है। उन्होंने रांझाको तो सौन्दर्यकी प्रतिमाके रूपमें उपस्थित किया है, मगर हीरको

झगड़ालू बहादुर तथा पौरुषकी साक्षात् मूर्तिके रूपमें चित्रित किया है। वारसशाहके कथा-सूत्रमें ऐसी कोई अस्वाभाविता नहीं है।

वारसशाहने अपने इस महाकाव्यमें पञ्जाबकी संस्कृतिका जीता-जागता चित्र खींचा है। रीति-रिवाज, प्रकृतिकी छटा और खुले स्वभाववाले पञ्जाबियोंका चित्रण करनेमें इन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली है। वारसशाहकी लोकप्रियता देनेवाली चीज है उनकी हृदय मर्मज्ञता। ये स्वयं ही अपने पात्रोंके रूपमें उपस्थित है। इसका रहस्य यही है कि इन्हें जीवनका गहरा अनुभव था। इन्होंने बहुत दुनियाँ देखी थी। हरेक घाटका पानी पी रखा था। मनुष्यके मनकी थाह लगानेकी इनमें अपार क्षमता थी। भाषाके ये उस्ताद थे।

वारसशाहकी कविताकी दूसरी विशेषता भाषाका प्रवाह है। वे बातको ऐसे कह जाते हैं कि जैसे ये कविता बना नहीं रहे हों, वरन् स्वयं उसके भीतरसे काव्य-स्रोत फूट पड़ा है। इनकी इस खूबीके पीछे भाषापर पूर्ण अधिकार और विचारोंकी सुलझी हुई तस्वीर है। इनकी कविताका स्रोत पहाड़के झरनेकी भाँति बहता चला जाता है।

तीसरी खूबी वारसशाह द्वारा पञ्जाबकी संस्कृतिका दिग्दर्शन कराना है। गाँवोंके जीते-जागते चित्र आँखोंके सम्मुख नाच उठते है। महफिलें, भाई-भौजाइयोंके रिश्ते, भोरकी वेलामें गाँवोंका रङ्ग, मस्जिदोंके दृश्य, योगियोंकी धूनियाँ, युवतियोंके त्रिञ्जन (सब सखियोंका मिलकर चर्खा कातना), ग्रामीणोंके लड़ाई-झगड़, ईर्ष्या-द्वेष आदिका सजीव चित्रण वारसशाहके काव्यमें मिलता है।

चौथी खूबी अलङ्कारोंका प्रयोग है। अलङ्कारोंसे वारसशाहकी कविता बोझिल नहीं है। वे अलङ्कारोंका स्वाभाविक ढङ्गसे प्रयोग करते है।

वारसशाहके काव्यका एक पहलू और भी है कि उन्होंने उस समयके समाजकी बुराइयोंका वर्णन ही नहीं किया, बल्कि उसमें सुधार करनेके कई सुझाव भी दिए हैं। समाजका आवश्यक अङ्ग स्त्री है। वारसशाहने हीरको सूझ-बूझ, चतुराई और वीरताकी देवी बना दिया है। उन्होंने सामाजिक प्राणियोंको एक नुस्खा बताया है कि दिलका भेद किसीके आगे नहीं खोलना चाहिए।

वारसशाहके महाकाव्य 'हीर' की कहानी वास्तवमें सारे पञ्जाबके रीति-रिवाज और सामन्ती रूढ़ियोंके विरुद्ध लोहा लेनेवाले दो प्रेमियोंकी महान गाथा है।

वारसशाह पञ्जाबके अमर कवि हैं। आज भी पश्चिमी और पूर्वी पञ्जाबके गाँव-गाँवमें वारसशाह-रचित 'हीर' लोगोंकी जबानपर है।

'हीर' की कथाको कवितामें कहनेवाले इसी समय एक और कवि हामद भी हुए हैं। इनकी रचनामें मौलिकता कम है, और लगता है कि 'हीर-रांझा' की पूरी-की-पूरी कहानी किसी पूर्व कविसे ले ली गई है।

सूफी तथा रोमाण्टिक कविताके इस चढ़ावके साथ-साथ उस जमानेकी उथल-पुथलने वीररसकी कविताको फिरसे जन्म दिया, पर इस दौरकी अधिक कविता

नहीं मिलतीं। नजाबत द्वारा रचित 'नादरशाह दी वार' बहुत प्रसिद्ध है। नजाबत मटीला हरला जिला शाहपुर (पश्चिमी पञ्जाब) के निवासी थे। नजाबतकी 'नादर शाह दी वार'को (जरनल ऑफ दी पञ्जाब हिस्टॉरिकल सोसाइटी भाग १) में रोमन अक्षरोंमें राय बहादुर हरिकृष्ण कौलने माढ़ोंसे सुनकर छपवाई थी।

यह 'वार' नादर शाहके आक्रमणके कोई आधी सदी पश्चात् लिखी गई थी। इसमें भारतीयोंके देश-प्रेमको उभारा गया है और नादरशाह तथा ईरानी सभ्यताकी निन्दा की गई है। यह 'वार' ऐतिहासिक दृष्टिसे काफी महत्व रखती है। इसमें नादर शाहके आक्रमणको बड़ी बारीकीके साथ चित्रित किया गया है।

उत्तरार्द्ध मुगल-काल—गद्य :

इस समय पञ्जाबी गद्यका जो विकास हुआ, उसका विषय वही पुराना रहा। साखियाँ (कथाएँ), धर्मोपदेशकी सीधी-सरल गद्य शैलीमें लिखी जाती रहीं। गद्यके विकासमें सबसे अधिक काम भाई मनीसिंहने किया। वे स्वर्ण मन्दिर अमृतसरके ग्रन्थी (पुरोहित) थे और गुरु गोविन्दसिंहके हजूरी सिख रह चुके थे। सिख धर्म और पञ्जाबी भाषाके अतिरिक्त इन्हें अन्य धर्मों तथा विशेषकर संस्कृत, फारसी और ब्रजभाषा पर अपूर्व अधिकार था। इसीलिए इनकी गद्य-शैलीमें विद्वानोंकी-सी प्रौढ़ता है। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सिखां दी भक्त माल' है, जो उस समयके गद्य-साहित्यका उत्कृष्ट नमूना है। इसमें प्रसिद्ध सिखोंकी जीवनियाँ संगृहीत है। हरेक जीवनीके साथ गुरु-ग्रन्थ साहबके किसी श्लोककी व्याख्या भी की गई है। पञ्जाबी भाषा और साहित्यके आलोचकोंका मत है कि भाई मनीसिंह पञ्जाबी गद्यके जन्मदाता है। भाई मनीसिंहकी भाँति पञ्जाबी गद्यको समृद्धिशाली बनानेवालोंमें एक अडुन शाह हुए हैं। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पारसभाग' है, जिसमें साधु-महात्माओंकी साखियाँ सीधी-सरल भाषामें लिखी हुई मिलती हैं।

इस समयके गुमनाम गद्य-लेखकों द्वारा लिखी गई हजरत मुहम्मद साहब, कबीर और रविदासकी जीवनियाँ भी मिलती है। पर इनकी भाषा इतनी खिचड़ी है कि केन्द्रीय पञ्जाबके लोगोंसे बहुत दूर चली गई है।

सिख राज्य-काल (सन् १८००–१८६० तक) :

महाराजा रणजीत सिंहका राज्य सारे पञ्जाबियोंका एक साझा राज्य था। आठ-दस सौ वर्ष तक भारत विदेशी अधीनताके नीचे पड़ा कराहता रहा। अब उसने एक सन्तोषकी साँस ली थी। प्रदेशमें शान्ति स्थापित हो गई। लाहौर एक बार फिर राजधानी बना। और लाहौरकी भाषा सब जगह प्रचलित होने लगी। यही भाषा उस समय के साहित्य की भाषा कहलाई। महाराज रणजीत सिंह भले ही कम पढ़े-लिखे थे, किन्तु उनमें राजनैतिक चतुराई तथा सूझ-

बूझके साथ कलाकारोंके परखने-निरखनेकी अद्‌भुत क्षमता थी। लेखकों-कवियोंका वे बहुत सम्मान करते थे। उन्हें जागीरें और पुरस्कार देते थे। यद्यपि महाराजा रणजीतसिंहके दरबारकी बोली फारसी थी, फिर भी उनके पञ्जाबी भाषाके प्रति प्रेमने प्रदेशके हरेक भागमें कवि और लेखक पैदा किए। पञ्जाबीको एक ठोस रूप मिलना शुरू हुआ। इस समय अधिकतर रोमाण्टिक कविता रची गई।

महाराज रणजीतसिंहके दरबारमें विदेशी लोग भी थे। महाराजा अपने जमानेकी किसी भी नई चीजको ग्रहण करना जानते थे। अपनी सेनाको आधुनिक साधनोंसे सज्जित करनेके लिए उन्होंने फ्राँसीसी अफसर नौकर रखे थे।

सिख राज्य-कालके सबसे अधिक प्रसिद्ध तथा प्रतिनिधि कवि हाशम थे। हाशम ११६१ हिजरीमें पैदा हुए थे और १२३० में उनकी मृत्यु हुई। एक किम्वदन्ती है कि महाराज रणजीतसिंहके पिता सरदार महासिंहकी स्तुतिमें लिखी एक कविता सुनानेपर रणजीतसिंह उनपर बहुत खुश हुए। धीरे-धीरे राज दरबारमें रुतबा बढ़ता गया और हाशम महाराज रणजीतसिंहके विशेष राज-कवियोंमें हो गए। उन्हें जागीर दी गई। हाशमकी सन्तानें १६४७ तक सिख राजकी ओरसे मिली जागीरपर ही गुजर करती रही है।

हाशम जगदे कलाँ (जिला अमृतसर) के निवासी थे। हाशमने 'शीरीं-फरहाद', 'लैला-मजनूँ', 'सोहनी-महीवाल', 'सस्सी-पुन्नूँ', 'दोहड़े' तथा 'बारह माह' आदि ग्रन्थोंकी रचना की। इनकी अन्तिम तीन रचनाओंमें भावुकता, सरल वर्णन, विस्तारसे संकोच, भाषाकी सादगी आदि गुण पाए जाते है।

'सस्सी-पुन्नूँ' की कहानी इस प्रकार है :—

सस्सी जाम बादशाहके महलोंमें पैदा होती है। उसके जन्मके समय ही ज्योतिषी बता देते है कि यह लड़की जवानीमें प्रेमके पीछे मर जाएगी। जाम अपनी बदनामी और लाजका ख्याल करते हुए सस्सीको सन्दूकमें बन्द करके नदीमें प्रवाहित कर देते है। वह सन्दूक तुल्ला धोबीके हाथ पड़ जाता है। वह सस्सीका पालन करता है। उसके जवान हो जानेपर तुल्ला उसके विवाहकी बात पक्की करना चाहता है, पर सस्सी मानती नहीं। धोबी जाम बादशाहके पास जाकर शिकायत करता है। सस्सीको जामके दरबारमें पेश किया जाता है। गलेका ताबीज दिखाकर सस्सी बादशाहको संकेत करती है कि वह उसकी ही बेटी है। उन दिनों किसी मूर्तिकारने एक सौदागरके बागमें बलोच शहजादे पुन्नूंका बुत बनाकर खड़ा किया था। उसे देखते ही सस्सी मुग्ध हो जाती है। एक बार बलोचोंका कोई काफिला उधर आता है। सस्सी उन्हें कैद करवा देती है। एक ही शर्तपर छोड़नेके लिअे तैयार होती है कि वे उसे पुन्नूंसे मिला दें। अन्तमें पुन्नूं आता है। पुन्नूं जब सस्सीके सौन्दर्यको देखता है तो उसपर वह भी मुग्ध हो जाता है। दोनों प्रेमी एक साथ रहने लगते हैं। पर जब बलोचोंको

इस बातका पता चलता है, तो वे एक रात पुन्नूंको जबरदस्ती शराब पिलाकर पकड़ ले जाते है। सस्सी सुबह उठनपर जब पुन्नूंको नहीं देखती तो वह उसकी खोज करती हुई मरुस्थलमें तड़प-तड़पकर जान दे देती है। पुन्नूंको होश आनेपर चरवाहोंसे पता चलता है कि सस्सी तो 'पुन्नूं-पुन्नूं' पुकारती मर चुकी है, तो वह भी मरुस्थलमें प्राण दे देता है। इस प्रणय-गाथाको हाशमने पीड़ा, विरह और प्रेम-विह्वलताके गाढ़े रङ्गमें भरकर लिखा है।

'सोहनी-महीवाल' की कहानीका वर्णन बड़ा सीधा-सादा है। कविने घटनाओं अथवा पात्रोंके चरित्र-चित्रणकी तरफ बहुत कम ध्यान दिया है। प्रचलित कहानीके अनुसार सोहनी गुजरात के एक कुम्हारकी बेटी है। महीवाल कोई परदेशी सौदागर है। प्रेमका अंकुर फूटता है। पर सोहनीका कहीं और विवाह हो जानेपर महीवाल विछोहकी आगमें जलने लगता है। महीवाल चिनाब दरियाके पार एक झोपड़ी बनाकर रहने लगता है। सोहनी रोज रातको घड़ेपर तैरकर अपने प्रेमीसे मिलनेके लिए जाती है। एक दिन ननदको पता चलता है। वह उसके साथ धोखा करती है। वह पक्के घड़ेके स्थानपर कच्चा घड़ा रख देती है। दरियामें ज्वार-भाटा उठता है। सोहनी अथाह पानीकी लहरोंमें समा जाती है। महीवाल भी उसकी चीखें सुनकर दरियामें कूद पड़ता है और सोहनीके साथ ही मर जाता है।

सस्सीका वर्णन कविने बड़े संयमके साथ किया है, जो उसकी एक खूबी बन गया है। कवितामें बड़ा प्रवाह है। अलङ्कारोंयुक्त मीठी भाषा सीधे हृदयको छूती है। हाशमकी तीसरी रचना 'शीरीं-फरहाद' साधारण कोटिकी है। किन्तु फिर भी वर्णन, शब्दोंका चयन और प्रवाह असाधारण है। इसमें कविने शाहजादी शीरींका एक बुत-तराशकर फरहादके साथ प्रेम दिखाया है। हाशमने हीर-रांझा, चाँद-चकोरी, सस्सी, बहार, पतझड़, सावन-ऋतु, काग, मेघ, समुद्र, बादशाह, लश्कर आदिके घरेलू प्रतीकोंका अपनी कवितामें खुलकर प्रयोग किया है। हाशमकी रचनाओंकी भाषा फारसी मिश्रित पञ्जाबी है।

इसी समयके दूसरे प्रसिद्ध कवि अहमदयार हुए हैं। इनका जन्म गुजरातके एक कस्बे इसलाम-गढ़में हुआ था। खानदानी पेशा खेती-बारी था। एक स्त्रीसे प्रेम हो जानेपर गाँवमें चर्चा छिड़ गई। इन्हें अपना गाँव छोड़कर मुराला गाँवमें आकर बस जाना पड़ा। महाराज रणजीत सिंहने इन्हें भी जागीरमें एक गाँव दिया था। खालसा-इतिहास लिखनेके लिए महाराज गुलाबसिंहने इन्हें अपने पास बुलाया था। इन्होंने फारसीमें 'फतहात खालसा' पुस्तककी भी रचना की है।

इनकी रचनाओंमें 'हीर', 'यूसफ', 'जुलैखाँ', 'कामरूप', 'राजबीबी' और 'हातमताई' प्रसिद्ध हैं। कामरूप किस्सेकी कहानी इन्होंने हिन्दीसे ली है।

एक चुड़ैलका वर्णन और समुद्रमें तूफानका दृश्य रोंगटे खड़े कर देनेवाला है। लेकिन सबसे अधिक इनकी कला 'हीर'के किस्सेमें निखरी है। इस किस्सेकी भाषा तथा उपमाएँ ही ठेठ घरेलू नहीं, भावनाओंका ज्वार भी अति तीक्ष्ण है।

सिख-राज्यके अन्तिम दिनोंमें धार्मिक कवि कादरयारकी ज्यादा प्रसिद्धि 'पूरन भक्त' का किस्सा बैत छन्दमें लिखने, या फिर महाराज रणजीत सिंहके एक सेनापति सरदार हरिसिंह नलुवाका युद्ध लिखनेके कारण हुई। 'राजा रसालू' पञ्जाबकी प्रसिद्ध लोक-गाथा है। इसके ऊपर 'वार' लिखते हुए कविने स्त्रियोंकी घोर निन्दा की है, जो सामन्तवादी दृष्टिकोणका पता देती है। उपयुक्त शब्दोंका चयन, लय-तालसे नपा-बँधा वर्णन और उपमाओंकी अधिकताने इनकी कविताको जोरदार बना दिया है। इन्हींकी श्रेणीमें आनेवाले एक अन्य कवि अमामबख्श भी हैं। 'बहराम गुरा' और 'चन्दर-बदन' इनकी विशेष रचनाएँ है। 'चन्दर-बदन' कथा-वस्तुके लिहाजसे आपकी एक उत्कृष्ट रचना है।

'बहराम गुर' में कविने खूब रंग बाँधा है। कथा-वस्तु फिरदौसीके शाहनामेसे ली है। यह एक रोमाण्टिक काव्य है।

इस कालमें कुछ कवियोंने देश-प्रेमकी कविता लिखकर काफी नाम पैदा किया। उनमेंसे शाह मुहम्मद सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए। आप पञ्जाबके पहले राष्ट्रीय कवि थे। इन्होंने देश-प्रेमकी कविताको अपना विषय बनाया। कविने सिख-राज्यका उदय और निरपेक्ष पञ्जाबी राज्य स्वयं अपनी आँखोंसे देखा था। जब सिखोंकी पहली लड़ाईमें खालसा फौजको परास्त होना पड़ा, तो शाह मुहम्मदने देश-प्रेमके रङ्गमें रंगी एक 'वार' लिखी। इस 'वार' में सिख-राज्यके पतन और महाराजा रणजीतसिंहकी मृत्युके पश्चात् पैदा हुई अराजकताको एवं सिखों और अँग्रेजोंके युद्धका वर्णन किया है। शाह मुहम्मदने सिखोंकी वीरता, हिन्दू-मुस्लिम एकता, अँग्रेजोंके आगमनपर खेद, घरकी फूट तथा डोंगरा सरदारोंकी सिख राज्यके साथ की गई गद्दारीको भावपूर्ण ढङ्गसे कवितामे पिरोया है।

शाह मुहम्मदके अतिरिक्त एक कवि मटकने भी अँग्रेजों और सिखोंकी लड़ाईका बड़े जोशीले ढङ्गसे वर्णन किया है। यह कवि न तो शाह मुहम्मदकी भाँति विस्तार में गया है और न युद्धके पहलेकी परिस्थितियोंको ही दर्शाया है। ऐतिहासिक दृष्टिसे मटकके काव्यकी महत्ता और भी अधिक है।

इस समय पञ्जाबी गद्यमें कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। अदालतोंकी भाषा तथा शिक्षाका माध्यम फारसी होनेके कारण पञ्जाबी गद्यको नया रूप न मिल सका। इसलिए कोई उच्च कोटिकी रचना न लिखी जा सकी। ई.सन् १८१५ में ईसाई पादरियोंके प्रयत्नोंसे इञ्जीलका पञ्जाबी अनुवाद प्रकाशित हुआ। गुरु-वाणी पर कई टीकाएँ भी लिखी गई। किशोरदासने भगवद्गीताका महात्म्य लिखा।

'डायरी महाराज रणजीतसिंह' भी इसी समय लिखी गई, जिसकी भाषा आजकी पञ्जाबी भाषाके बहुत निकट है। अँग्रेजोंके पञ्जाबमें पैर जमनेके पश्चात् ई. सन् १८५४ मे लुधियाना-मिशनने पञ्जाबी कोश भी तैयार किया। इसी समय 'अकबर-नामा' और 'अदले-अकबरी' के भी पञ्जाबी अनुवाद प्रकाशित हुए।

अँग्रेजी राज्य-काल (सन् १८६०–१९२० तक) :

पञ्जाब भारतका सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य था। सारे भारतपर अपने पैर जमा लेनेके बाद अँग्रेजोंने इसपर अधिकार किया। विदेशी पराधीनताने पञ्जाबको गहरी नींदमें सुला दिया। चारों तरफ निराशाके कारण जीवनमें घोर उदासीनता छा गई।

ई. सन् १८७२ में नामधारी आन्दोलन चला। इसका उद्देश्य सिखोंकी खोई हुई मान-मर्यादा, सादगी तथा देशकी स्वतन्त्रताके लिए एक तड़प पैदा करना था। नामधारियोंने विदेशी सरकार, विदेशी शिक्षा, विदेशी वस्त्र तथा प्रत्येक विदेशी वस्तुओंके बहिष्कारका प्रचार किया। नामधारी सिखोंके नेता गुरु राम-सिंहको अँग्रेजों द्वारा बर्मामें निर्वासित किए जानेसे और उनकी दमन नीतिके कारण यह आन्दोलन कुछ दब-सा गया, पर भीतर ही भीतर चिनगारी सुलगती रही। उस समयके साहित्यपर इसका कोई विशेष प्रभाव नही पड़ा।

अँग्रेज सरकार पञ्जाबमे आते समय अपने साथ यू. पी. से ऐसे क्लर्कोंकी एक सेना भी लेती आई थी, जिनकी मातृभाषा उर्दू थी। इन उर्दू जाननेवाले क्लर्कोंकी सहायतासे उर्दूको अदालतकी भाषा बना दिया गया। आगे चलकर पञ्जाबमें शिक्षाका माध्यम उर्दूको बना दिया गया ताकि क्लर्कोंकी माँग यहींसे पूरी होती रहे। बंगाली बाबू भी सरकारी दफ्तरोके लिए मँगाए गए। बंगाली भाई अँग्रेजी भाषाके जानकार थे। इसलिए अँग्रेजीका काम उनके सिपुर्द किया गया। ये बंगाली बाबू पञ्जाबीको सरकारी भाषा बनानेका विरोध भी करते रहे।

गाँवोंके किस्सा-कवियोंने पञ्जाबीका प्रचार जारी रखा। इनके पास न तो अँग्रेजी शिक्षा थी और न अधिक ज्ञान। किन्तु इसी समय शिक्षाके क्षेत्रमें पञ्जाबी भाषाके प्रवेश एवं 'सिंह-सभा'के आन्दोलनने पञ्जाबी साहित्यमें एक नया मोड़ लाया।

ई. सन् १८६० में शिक्षा विभागका कार्यालय लाहौरमे स्थापित किया गया। शिक्षाकी भाषा उर्दू थी, मगर लड़कियोंको पञ्जाबीमें शिक्षा देनेकी छूट दी गई थी। इनकी माँगको पूरा करनेके लिए लाला बिहारीलाल पुरी आदिने शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकें लिखीं और इस प्रकार नए पञ्जाबी गद्यकी नींव पड़ी। ई. सन् १८६४ मे लाहौरमे ओरिएण्टल कालेज खोला गया। इसके प्रिन्सिपल डॉ. लैटीनर देशी भाषाओंके प्रचारके जबरदस्त हिमायती थे। इस कालेजका उद्देश्य देशी भाषाओंका प्रचार करना था। इस कालेजमें पञ्जाबीको प्रमुखता

दी गई और पञ्जाबीके प्रथम प्राध्यापक भाई गुरमुखसिंह नियुक्त किए गए। ईसाई पादरियोंने पञ्जाबमें अपने प्रचारके लिए लुधियानाको अपना केन्द्र बनाया। इन्होंने लुधियानाकी उप-भाषाको प्रचलित करनेका प्रयास किया। ई. सन् १८४६ में इन्होंने ही सर्वप्रथम गुरुमुखी टाईपका भी प्रचलन किया था। ई. सन् १८८२ में पञ्जाब यूनिवर्सिटीकी स्थापना हुई। इससे अँग्रेजी साहित्यकी जानकारी बढ़ने लगी। साथ ही पञ्जाबीके पठन-पाठनसे एक नया पाठक-वर्ग भी तैयार हो गया। ओरिएण्टल-कालेज-कौन्सिलको पञ्जाबी, उर्दू, हिन्दीकी श्रेष्ठ पुस्तकोंपर पुरस्कार देनेका अधिकार दिया गया। 'पञ्जाब टेक्स्ट बुक कमेटी' ने पञ्जाबीमें विदेशी पुस्तकोंके अनुवाद प्रारम्भ किए तथा मौलिक रचनाओंको पुरस्कृत किया।

नए पञ्जाबी साहित्यपर अपना प्रभाव डालनेवाला दूसरा आन्दोलन सिंह-सभाका था। भाई गुरमुखसिंह, जवाहरसिंह आदिने लाहौरमें 'खालसा दीवान' की नींव रखी। सिंह-सभाओंको संगठित करनेवाली यही एक संस्था थी। पञ्जाबके सभी मुख्य शहरोंमें सिंह-सभाकी शाखाएँ स्थापित की गईं। सिंह-सभाओंका मुख्य उद्देश्य पञ्जाबीका प्रचार करना था। इसीके प्रयत्नोंसे पञ्जाबीका सबसे पहला पत्र 'गुरमुखी' लाहौरसे १८८० में प्रकाशित हुआ। उन्नीसवीं सदीके अन्तमें दूसरे पत्र 'खालसा' ने काफी प्रसिद्धि हासिल की। ई. सन् १८९९ मे 'खालसा समाचार' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसके कर्णधार भाई वीरसिंह थ, जो प्रभातकालीन सूर्यकी भाँति पञ्जाबी-साहित्य-क्षितिजपर उदय हुए।

सिंह सभाके दूसरे लेखकोंमें काहनसिंह, पूरणसिंह और चरणसिंह शहीद अधिक मशहूर हैं। पूरणसिंहने लिखनेकी एक नई शैली चलाई। इन्होंने निबन्ध एवं कविताएँ लिखी हैं। 'खुले घुण्ड', 'खुले मैदान' और 'खुले लेख' इनकी पुस्तकें प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। चरणसिंह शहीदने पहलीबार पञ्जाबीके हास्यपूर्ण निबन्ध एवं कविताएँ लिखीं। ये 'मौजी' साहित्यिक पत्रिकाके सम्पादक भी थे।

यहाँपर पञ्जाबीके महान् कवि धनीराम चात्रिकको भी नहीं भुलाया जा सकता। केवल भाई वीरसिंह को ही इनसे ऊँचा पद दिया जाता है। 'केसर क्यारी', 'नवाँ जहान' और 'चन्दन बाड़ी' इनके प्रसिद्ध काव्य संग्रह हैं।

सन् १९१९ से लेकर कुछ वर्षतक सिखोंकी अँग्रेजी सरकारसे टक्कर चलती रही। इस आन्दोलनको चलानेवाले अकाली थे। उस समय जनतामें एक उत्साहका सञ्चार हुआ। उसका प्रभाव साहित्य रचनापर भी पड़ा। गुरुमुखसिंह और हीरासिंह दर्द भी प्रसिद्ध लेखक हैं। मास्टर तारासिंह भी उपन्यास लिखते रहे हैं।

सम्भवतः १९२० के आस-पास कृपासागरने सर वाल्टर स्काटकी लम्बी कविता 'दी लेडी आफ दी लेक' का पञ्जाबीमें अनुवाद किया। कृपासागरके अनुवादोंकी भाषा ठेठ पञ्जाबी है।

साहित्यक दृष्टिसे इस समयके साहित्यका कोई विशेष महत्व नहीं है। हाँ, इसमें कोई सन्देह नहीं कि लेखकोंने खूब जी भरकर लिखा और उनके हृदयमें अपने साहित्यको बढ़ानेकी उत्कट प्यास थी।

× × ×

[**नोट**—सन् १९२० से आज तकके पञ्जाबी साहित्यका संक्षिप्त परिचय 'कवि-श्री माला : पञ्जाबी—अमृता प्रीतम' में दिया गया है।]

● ● ●

भाई वीरसिंह

[कवि-परिचय]

भाई वीरसिंह

• • •

भाई वीरसिंहका जन्म पाँच दिसम्बर १८७२ ई. में हुआ था। आपके पिता डा. चरणसिंह ब्रजभाषाके कवि थे और नाना पण्डित हजारासिंह संस्कृत तथा फारसीके विद्वान् थे। उनकी धार्मिक ग्रन्थोंकी टीकाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। बचपनसे आपने पिता और नानासे साहित्यिक तथा धार्मिक प्रभाव ग्रहण किया। भाई वीरसिंहने अमृतसरके मिशनरी स्कूलमें दसवीं श्रेणी तक शिक्षा हासिल की। थोड़ी बहुत संस्कृत और फारसी उन्होंने अपने नाना ज्ञानी हजारासिंहसे पढ़ी।

भाई वीरसिंहके दादा बाबा कान्हसिंह सिख इतिहासके प्रसिद्ध अन्वेषक दीवान कौड़ामलकी सन्तान थे, जो मीर मन्नूके समय मुलतानके गवर्नर थे और मुलतान जीतनेके उपलक्ष्यमें उन्हें 'महाराजा बहादुर' का खिताब मिला था। सिख धर्मके प्रति श्रद्धा और मुसीबतोंके समय सिखोंकी हर प्रकारसे सहायता करनेके कारण सिख इतिहासमें इस महापुरुषको 'दीवान मिट्ठा मल' के नामसे प्रेम और सम्मान दिया जाता रहा है।

बचपनसे ही भाई साहब स्वतन्त्रता-प्रिय थे। इनकी रुचि नौकरीकी ओर न होकर व्यापारकी ओर थी। ई. सन् १८९२ में इन्होंने किसीके साथ मिलकर 'वजीर हिन्द प्रेस' खोला, जो पञ्जाबीका अमृतसरमें सबसे पुराना प्रेस है।

भाई साहबका विवाह ई. सन् १८८६ के लगभग हो गया था। इनके दो लड़कियाँ थीं। भाई वीरसिंह ई. सन् १८९८ से लेकर अपनी मृत्यु पर्यन्त साहित्य-साधनामें लगे रहे। आप सर्वतोमुखी प्रतिभाके धनी थे। काव्य, महाकाव्य, गद्य, लेख, उपन्यास, नाटक, धार्मिक व्याख्या आदि सब विभागोंमें इन्होंने सफलता प्राप्त की। 'राणा सूरतसिंह' (महाकाव्य) और 'बाबा नौधसिंह' (उपन्यास) इनकी दो अमर कृतियाँ है।

भाई वीरसिंहने पञ्जाबी साहित्यकी लगभग पचास साल तक सेवा की। इतना लम्बा अरसा शायद ही किसी लेखकको मिला हो। ई. सन् १८९८ से पूर्वकी छिट-पुट रचनाओंको छोड़कर हम इनकी कृतियोंको तीन भागोंमें बाँट सकते है:—

प्रथम दौर (ई. सन् १८९८–१९०२)मे विशेषत: धार्मिक रुचि प्रधान रही सिख धर्मके प्रचारका लक्ष्य सामने रखकर धार्मिक उपन्यासोंकी रचना सबसे प्रथम भाई वीरसिंहने प्रारम्भ की। इनका सबसे पहला उपन्यास 'सुन्दरी' ई. सन् १८९८ में लिखा गया। यह उपन्यास पञ्जाबीमे सबसे अधिक पठित पुस्तक मानी जाती है। अब तक इसके लाखोंकी संख्यामें कई संस्करण प्रकाशित हो चुके है। 'सुन्दरी' की मूल कथाका सम्बन्ध एक ऐतिहासिक घटनासे है। इसमें अठारहवीं सदीके सिख आचरण विशेषत: सिख वीरांगनाओंकी वीरताका आदर्श पेश किया गया है। 'विजयसिंह' (ई. सन् १८९९), 'सतवन्त कौर' (ई. सन् १९००) भी इसी धार्मिक मन्तव्यको लेकर लिख गए दो उपन्यास है। कथा-वस्तु और वर्णनकी दृष्टिसे ये रचनाएँ बड़ी आकर्षक है। ये धार्मिक रचनाएँ भाई वीरसिंहके एकपक्षीय विकासकी द्योतक थीं।

दूसरे दौर (ई. सन्१९०२–१९२०) में भाई साहबने 'राणा सूरतसिंह' जैसे महाकाव्यकी रचना करके पञ्जाबी साहित्यकी दिशा ही मोड़ दी। इस महाकाव्यका विषय धर्म तथा दर्शन है। यह महाकाव्य शिरखण्डी छन्दमे है। भाई वीरसिंहने 'राजा लखदाता सिंह'(ई. सन्१९२०)नामक एक नाटक भी लिखा, जिसका स्थान पञ्जाबीके प्रारम्भिक नाटकोंमे सुरक्षित है।

इसके उपरान्त छोटी कविताओंका दौर आता है। 'लहरां दे हार' (ई. सन् १९२१), 'मटक हुलारे' (ई. सन् १९२५), 'बिजलियाँ दे हार' (ई. सन् १९२७) भाई वीर-सिंहके तीन प्रसिद्ध काव्य-संग्रह है। ये कविताएँ भाव-प्रधान है। 'लहरां दे हार' और 'बिजलियाँ दे हार' की छोटी कविताओंमें, विशेषत: रुबाईओंमे धार्मिक भावोंकी अभिव्यक्ति हुई है और साथ ही दर्शन जैसे कठिन विषयको बड़े हलके-फुलके ढंगसे व्याख्याकी है। 'मटक हुलारे' मे कवि न प्रकृतिकी देवी कश्मीरके रमणीक दृश्योंमें एक अलौकिक चमत्कार देखकर किसी अदृश्यके अस्तित्वका अनुभव किया है।

कविताके अतिरिक्त गद्यकी कई श्रेष्ठ कृतियाँ पञ्जाबी साहित्यको देनेका श्रेय भी भाई वीरसिंहको है। 'बाबा नौधसिंह' (ई. सन् १९२४), 'कलगीधर चमत्कार'

(ई. सन् १९२५), 'गुरु नानक चमत्कार' (ई. सन् १९२६), 'सतवन्त कौर (दूसरा भाग–ई. सन् १९२७) इनके गद्य साहित्यके विकासकी सीढ़ियाँ हैं।

धार्मिक भावोंसे ओत-प्रोत भाई वीरसिंहके गद्य साहित्यने सिखोंमें समाज-सुधारका एक शक्तिशाली आन्दोलन खड़ा कर दिया था। सिखोंकी सामाजिक जागृति भाई वीरसिंहकी सशक्त लेखनीकी देन है। ब्रजभाषाके महान् सिख कवि भाई सन्तोखसिंह रचित 'गुर प्रताप सूर्य ग्रन्थ' के सम्पादनमें आपने कई वर्षके परिश्रमसे इसे गुरुमुखी लिपिमें पाद टिप्पणियों सहित ई. सन् १९३५ में प्रकाशित किया।

पञ्जाबी पत्रकारिताके क्षेत्रमें भाई वीरसिंहने 'खालसा समाचार' के प्रकाशनके साथ प्रवेश किया था। उन दिनों पञ्जाबीमें पत्रोंका प्रकाशन अपनी प्रारम्भिक अवस्थामें था। पञ्जाबी पत्रकारिताके इतिहासमें इस पत्रने एक चेतना, नई दिशाको जन्म दिया। बाकी छिट-पुट पत्र प्रकाशित होते रहे, पर कोई छह महीने चलता, और किसीकी आयु साल भरकी ही होती थी। उन दिनों पञ्जाबीके किसी पत्रको जीवनदान देते रहना बड़े भारी साहसका काम समझा जाता था। भाई वीरसिंहकी गद्य-रचनाएँ पहले इस पत्रमें धारावाहिक रूपसे छपती थीं, तत्पश्चात् उन्हें पुस्तकका रूप दे दिया जाता था। यह पत्र भाई वीरसिंहकी साहित्यिक गतिविधियोंके साथ-साथ 'सिंह-सभा आन्दोलन' का भी प्रतिनिधि पत्र माना जाता था। भाई साहबने सिख धर्मके प्रचार हेतु 'खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी' की नींव रखी थी, जिसका मुख्य उद्देश्य सिख-साहित्यका प्रचार करना था।

भाई वीरसिंहकी सेवाओंको देखते हुए पञ्जाब यूनिवर्सिटीने ई. सन् १९४९ में आपको 'डॉक्टर ऑफ ओरिएण्टल लर्निंग' की उपाधिसे विभूषित किया था। ई. सन् १९५२ में आप पञ्जाब विधान परिषदके माननीय सदस्य मनोनीत किए गए। ई. सन् १९५५ में आपकी अन्तिम काव्य-पुस्तक 'मेरे साईआँ जीओ' को साहित्य अकादमी द्वारा ५००० रु. का पुरस्कार प्रदान किया गया। जीवनके अन्तिम दिनोंमें आप बहुत कम लिखते थे, किन्तु 'खालसा समाचार' द्वारा आपके विचार फिर भी पाठकों तक पहुँचते ही रहते थे। भाई वीरसिंहके जीवन-दर्शनको दृष्टिमें रखते हुए कहा जा सकता है कि आप सिख साहित्यके सबसे बड़े कवि थे। आपने सबसे अधिक लिखा। आप सिख विचार-धाराके प्रबल समर्थक रहे, किन्तु फिर भी आप शैली, भाषा, विषय तथा प्रकृति-वर्णनकी दृष्टिसे उच्च कोटिके साहित्यकार थे। आपने गद्य-पद्य-दोनोंमें युगान्तर ला दिया। पञ्जाबी संस्कृति और जीवनकी जो झलक आपकी रचनाओंमें मिलती है, वह वारसशाहकी कविताके अतिरिक्त कहीं नहीं मिलती। भाई वीरसिंह सिख विचार-धाराके कवि होते हुए भी पञ्जाबी जीवनपर पूरी तरह छा गए थे।

काव्य-शैली :

भाई वीरसिंह एक साधारण-सी बातको भी असाधारण बना देनेमें दक्ष हैं। इनका प्रकृति चित्रण बड़ा ही सजीव है। प्रकृति-वर्णनके अलावा भाईजीने विछोहकी पीड़ाको बड़े ही हृदयस्पर्शी शब्दोंमें गूँथा है। जहाँ एक ओर इनके वर्णनमें विस्तार है, वहीं दूसरी ओर थोड़े शब्दोंमे अपना भाव प्रकट करना भी ये जानते है। इनकी शैलीमे कहीं-कहीं प्रचारका रङ्ग आ जानेसे काव्य-कलापर कुछ चोट अवश्य पहुँचती है।

अलङ्कार कविताके आभूषण है। भाई वीरसिंहने प्रसङ्गानुकूल अलङ्कारों का प्रयोग एक सुलझे हुए कविकी भाँति किया है। मुहावरों द्वारा शैलीको रोचक तथा जोरदार बनाया है। कविता और सङ्गीतमें बडा घनिष्ट सम्बन्ध है। इन्होंने अपनी कवितामे सङ्गीतकी लय पैदा करनेके लिए अनुप्रासोंका भी प्रयोग किया है। प्रमाणित और ऐतिहासिक सङ्केतोंके साथ नवीन सङ्केत और प्रतीकोंका प्रयोग भी किया है। सिख गुरुओंकी वाणीके गहरे अध्ययनके कारण गुरु वाणीकी शब्दावली आपकी कवितामें यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है।

कवितामें संगीत :

भाई वीरसिंहकी कवितामें सङ्गीतकी प्रधानता है। कोई-कोई कविता तो पाठक स्वयं ही गा उठता है। इसका कारण यह है कि भाई साहबका प्रारम्भिक जीवन धार्मिक रङ्गमें रँगा हुआ और सिख धर्मके अनुकूल ढला हुआ था। गुरु-वाणीके सतत अभ्यासके कारण ये सङ्गीतकी ओर उन्मुख हुए। सिख गुरुओंकी सारी वाणी सङ्गीतका एक ऐसा स्रोत है, जो कभी नहीं सूखता। सिख-परम्पराके अनुसार सङ्गीतकी बड़ी महिमा है। सुबह-शाम गुरुद्वारोंमें गुरु वाणी गाई जाती है। गुरु-घरका कोई ऐसा नहीं मिलेगा, जो सङ्गीतमे पारङ्गत न हो, जो गुरु वाणीके सुन्दर शब्दोंको लय, ताल और स्वरमें बाँधना न जानता हो।

भाई वीरसिंह इन्हीं संस्कारोंको लेकर बड़े हुए थे। इनके रोम-रोममें गुरुवाणीका वह सङ्गीत रम गया था, जिसे ये बचपनसे ही सुनते चले आए थे। आगे चलकर जब इन्होंने काव्य-क्षेत्रमे कदम रखा, तो यह सङ्गीत-संस्कार इनकी कवितामें भी ढल गया। सङ्गीतके वातावरणकी प्रफुल्ल आत्मा प्रेम-रूप ही तो होती है। प्रेमकी भावना जहाँ कल्पनाको जन्म देती है, वहाँ एक मौलिक सङ्गीतकी जन्म-दात्री भी बन जाती है। भाई वीरसिंहके स्वभावकी कोमलताके कारण इनका सङ्गीत भी एक कोमलता लिये हुए है। इनकी कवितामे भरे हुए सङ्गीतसे पाठक एक अजीब मस्तीमें डूब जाता है, उसीमें लीन हो जाता है।

काव्य-कल्पना :

भाई वीरसिंहकी काव्य-कल्पनाका जिक्र करते हुए हम यह बात भी देखेंगे कि इनकी कवितामें नवीनता किस हद तक है। रूप-विधानकी दृष्टिसे भाई वीरसिंहके काव्यमें एक नवीनता अल्प दृष्टि रखनेवालेको भी दृष्टिगोचर होती है। भाई साहबके महाकाव्य 'राणा सूरतसिंह' के 'शिरखण्डी' छन्दसे उत्पन्न काव्य-प्रवाह हमारे इस कथनकी पुष्टि कर देता है। इस छन्दका प्रयोग गुरु गोविन्द सिंहने अपनी एकमात्र पञ्जाबी कविता 'चण्डी दी वार' में सफलतापूर्वक किया था। तदुपरान्त 'हीर-वारस शाह' से पञ्जाबीमें 'बैत' छन्दका प्रचलन हुआ, जिसने अपनी एक अलग परम्परा कायम कर ली। इसके पश्चात् पञ्जाबी साहित्यमें 'राणा सूरतसिंह' ही एक ऐसा महाकाव्य है, जो अपना सानी नहीं रखता। 'शिरखण्डी' छन्दके प्रवाहमय वर्णनने इसमें वह नवीनता लाई है, जो भाई वीरसिंहकी सारी काव्य-रचनाओंमें कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती।

कल्पना आत्माका एक स्वाभाविक गुण है। साहित्यमें रूप और विषयके दोनों पक्षोंको यह नई दिशा देती है। भाई वीरसिंहकी काव्य-कल्पनाकी परखके लिए कविके जीवन-दर्शनको समझना आवश्यक है। भाईजीने अपना सारा जीवन-दर्शन भारतीय संस्कृतिके युगोंसे चले आ रहे विशाल आत्म-दर्शनके अनेक अङ्गोंसे उधार लिया है। इस दृष्टिसे ये नवीन नहीं है, ये परम्परावादी हैं।

पञ्जाब महान् रोमाण्टिक गाथाओंकी जन्म-भूमि है, प्रेम तथा सौन्दर्यकी रङ्गीन गाथा है, एक जीती-जागती कविता है। इस धरतीके कण-कणमें प्रेम और सौन्दर्य, अमर यौवन, नाचती-इठलाती पाँच नदियोंके रूपमें जिन्दगीकी धड़कन सुनाई देती है। यहाँ पूर्णसिंह वाल्ट ह्विटमैनके साथ हाथ मिलाते हैं, वहाँ गुरु नानक और शाह मुहम्मद विदेशियों द्वारा अपने देशको पैरों तले रौंदने दिये जानेपर तड़प उठते हैं। उनकी यह तड़प जब काव्य-कल्पनाका रूप लेती है, तो पढ़नेवालोंके दिलोंमें देश-प्रेमकी एक अविरल धारा प्रवाहित हो उठती है।

भाई वीरसिंहने जो महान् काम किया, वह था पञ्जाबी भाषाको परम्परागत सन्त-भाषाके तंग घेरेसे निकालकर एक नया रूप प्रदान करना। जिस समय भाई साहबने साहित्यिक जगत्में प्रवेश किया, उस समय पञ्जाबीको भाषा नहीं, वरन् गँवारोंकी बोली समझा जाता था। पञ्जाबके अधिकतर विद्वान् कवि ब्रजभाषामें कविता लिखना बड़े गौरवकी बात समझते थे। भाई वीरसिंहके पिता डा. चरणसिंह ब्रजभाषाके अच्छे कवि थे। किन्तु भाई वीरसिंहने पञ्जाबी भाषाको एक पूर्ण भाषा बनानेमें जो साधना की, वह कभी नहीं भुलाई जा सकती।

प्रकृति-वर्णन :

पञ्जाबी कविताको भाई वीरसिंहकी प्रकृति वर्णनकी जो देन है, वह अद्वितीय है। इनसे पूर्व किसी कविने इतनी गहराई और एकाग्रतासे प्रकृतिके साथ एकात्मकता स्थापित नहीं की थी। भाई साहब प्रकृतिके सौन्दर्यको देखकर मस्तीमें झूम उठते है। कोमल भावोंको व्यक्त करनेवाली इनकी कलम प्राकृतिक छटाको निहारते ही तेज गतिसे चलने लगती है। ये जब कश्मीरके सौन्दर्यका वर्णन करते हैं तो किसी अनूठ प्रभावसे मन मस्तीमें डूब जाता है। कवि वैरी नाग* के सौन्दर्यको देखकर पुकार उठता है :--

वैरी नाग ! तेरा पहला झलका
जद अंखियाँ विच वजदा,
कुदरत दे कादर दा जलवा
लै लैदा इक सिजदा।
रंग फिरोजी, झलक बल्लौरी,
डलक मोतियाँ वाली,
रूह विच आ आ जज्ब होई,
जी वेख वेख नहीं रजदा।
ना कुई नाद सुरोद सुणीवे,
फिर 'संगीत रस' छायिआ,
चुप चान पर रूप तिरे विच
कविता रंग--जमाइआ।
सरद् सरद् पर छुहियाँ तेनूँ
रूह सरूर विच आवे,
गहर गंभीर अडोल सुहावे !
तैं किहा जोग कमाइआ ?

[वैरी नाग ! जब तेरी प्रथम झलक आँखोंमें समाती है, तो प्रकृतिके सृष्टाका जलवा तेरे समक्ष नतमस्तक हो जाता है। तुम्हारा फिरोजी रङ्ग, बिल्लौरी झलक एवं मुक्ता-सी चमक-दमक आत्मामें समाती चली जाती है। तुझे देख-देखकर मन भरता नहीं है। कोई लय और ताल सुनाई नहीं देता है। फिर भी सङ्गीत रस बरस रहा है। मौन रूपसे कविता तुझमें व्याप्त है। तेरे शीतल स्पर्शसे आत्मा आनन्द-विभोर हो उठती है। तूने गहन, गम्भीर एवं अडिग, यह कैसा योग धारण किया है ?]

---

* कश्मीरका एक झरना।

फूलोंसे इन्हें प्रेम है। गुलदाउदी, नर्गिस और गुलाबका सौन्दर्य इन्हें प्राकृतिक रङ्गमें रँग देता है। गुलाबके फूलका एक वर्णन लीजिए :—

धरती गोद बनाय
मैं इस विच खेडिया,
मिट्टी जड़ा गडाय
मैं भोजन खिचिया।
रज रज पीता नीर
मैं आडों वगदियों,
हो गिया मैं नमगीर
ते त्रेलां चखियाँ।
बदल अरशों सद
मैं पाणी खिचिया,
न्हाता मैं रज रज
ते न्हा न्हा निखरिया।
सूरज पासों धूह
मैं किरना लीत्तियाँ,
निघी कीती रूह
मैं वधिया मौलिया।
चानण ते निघ कढ
मैं लीत्ता धुप्प तों,
लई आप विच गड
उह मानों धुप मैं।
ताण चाँदनी शाल
मैं सुत्ता रात नूं,
डलक तारियाँ नाल
मैं लइयाँ लोरियाँ।
न्हेरा लिया बिठाल
मैं पहरेदार सी,
कुई न देय उठाल
मैं रातीं सुत्तियाँ।

[मैं धरतीकी गोदमें क्रीड़ा करता रहा। मिट्टीमें जड़ें जमाकर मैंने भोजन प्राप्त किया है। बहते नालोंसे जी भरकर पानी पिया है एवं ओसको

चखकर मैं आर्द्र हुआ हूँ। आकाशसे मेघोंको बुलाकर मैंने पानी खींचा है। उस पानीसे खूब नहाकर मैं निखर गया हूँ। सूर्यसे मैंने किरणें छीनी हैं। अपनी आत्माको ऊष्णता प्रदान करके मैं बढ़ा और फूला-फला हूँ। चाँदनीकी शाल ओढ़कर मैं रात्रिको सोता हूँ। तारोंकी चमकसे मैंने लोरियाँ ली हैं। अँधेरेको मैंने पहरेदार बनाकर बिठा लिया है ताकि मुझे कोई जगा न दे।]

भाई साहब प्रकृतिको कोई भौतिक वस्तु नहीं मानते, वे इसे अदृश्य शक्तिका चमत्कार समझते हैं। प्रकृतिके सौन्दर्यका इतना आकर्षक वर्णन केवल भाई वीरसिंहकी कवितामें ही मिलता है। प्रकृतिमें ये अपने अराध्य देवकी झलक देखते हैं। कवि प्रातःकालमें खिले हुए गुलाबके सौन्दर्यमें किसी अलौकिक छविके दर्शन करता है :—

अज्ज नूर दे तड़के
जदों लै रही सी सवेर अंगड़ाइयाँ
पहु फुटाले दी गोद विच;
तुसीं खेल रहे सओ मेरे सांइयाँ !
किंज, हां किंज ! आ गए सओ
ओस निकी गोद विच ?
मेरे ऐडे वडे विशाल सांइयाँ

[आज जब ज्योतिर्मय उषा अँगड़ाई ले रही थी, तब एक खिले हुए स्निग्ध गुलाबमें तुम खेल रहे थे। इतने विशाल मेरे प्रियतम ! कैसे ? हाँ, कैसे आ गए उस छोटी-सी गोदमें ?]

इनकी दृष्टिमें प्रकृति ही मानव समाजकी सारी समस्याओंका एक मात्र हल है। इनकी धारणा है कि जो व्यक्ति एक बार प्रकृतिके रहस्यमय रूपको पहचान गया, वही सुखी है। सुखकी अन्य सांसारिक परिभाषाओंमें इनका विश्वास नहीं है। उनकी तरफसे ये उदासीन हो जाते है।

भाई वीरसिंह प्रकृतिके असली रहस्यकी खोज करते हुए कहते है कि प्रकृति निहारनेकी वस्तु है, प्रयोगमें लानेकी नहीं। यह एक जादूका बाग है, जिसमें मनुष्य हरेक वस्तुको देखकर रस-भोगी हो सकता है। भाई साहब वर्ड्सवर्थकी भाँति प्रकृतिके चितेरे है। ये मानते हैं कि प्रकृति मनुष्यकी माँ है, जो अपनी सुखद गोदीमें बैठाकर मनुष्यको लोरियाँ देती है।

देश-प्रेमकी भावना :

आलोचकोंने भाई वीरसिंहको अपने युगकी धाराओं अथवा प्रभावोंसे निर्लिप्त रहनेका फतवा देकर उनकी कड़ी आलोचना की है। इस बातमें कोई सन्देह नहीं कि भाई साहब उन प्रगतिशील आलोचकोंके माप-दण्डके अनुसार एक प्रतिक्रियावादी कवि है, किन्तु कुछ विचारशील आलोचक इन्हें अपने युगकी परिस्थितियोंके अनुसार एक सृजन और मानवतावादी कवि मानकर उनके प्रतिक्रिया-वादी होनेकी मान्यताको कमजोर कर देते हैं।

भाई वीरसिंहके जीवन-दर्शनमें मानव-प्रेम अथवा सामाजिक सेवाको विशेष महत्व प्राप्त है। सिख धर्मका वह सिद्धान्त जिसके द्वारा जीवन-दान एवं बलिदानका पाठ पढ़ाया गया है, भाई वीरसिंहकी कवितामें यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है। देशकी पराधीनता इनको अखरी है। 'गङ्गाराम' इनकी स्वतन्त्रता सम्बन्धी एक लम्बी कविता है, जिसमें देशकी स्वतन्त्रताके लिए एक तड़प है, व्यथा है और है एक दर्द।

भाई वीरसिंहको अपने देशकी हरेक परम्परा---धर्म, संस्कृति और कला इतनी अधिक प्रिय है कि ये अपने आपको किसी एक धर्म या मतमें बँधा हुआ नहीं देखते। य एक सच्चे राष्ट्रवादी है। उनका विचार है कि कोमल कला, मूर्तिकला, चित्रकला, कविता आदि सारे संसारकी कलाएँ है। इनका सहज-सौन्दर्य मनुष्य-मात्रकी पूँजी है।

महान् परम्पराके वारिस :

प्राकृतिक छटा, प्रेम अथवा किसी वीर योद्धाकी अद्वितीय वीरताको अनुभव करके मनुष्य बरबस गा उठा। उसके शब्द सङ्गीत और तालका सहारा लेकर कबीले या टोलेकी प्रेरणा बन गए और इसीको कविता कहा जाने लगा। यही दूसरोंके लिए बोलने या गानेवाला कवि समाजका प्रतिनिधि और आवाज बन गया। कविता एक राष्ट्रकी बहुमूल्य सम्पति बन गई।

प्राचीन कालसे ही भारतीय-काव्य-परम्परा धार्मिक धाराकी पोषक रही है। हमारे देशका समूचा जलवायु ही इस परम्पराके अनुकूल रहा है। पञ्जाबी के प्रथम सूफी कवि बाबा फरीदने बारहवीं सदीमें इस अध्यात्मिक कविताकी परम्पराको आगे बढ़ाया। इसी कालमें पञ्जाबीमें वीरोंकी 'वारें' लिखी गई। नौ 'वारें' तो गुरु-ग्रन्थ साहबमें संगृहीत है।

पञ्जाबी कविताकी सबसे शक्तिशाली परम्परा अध्यात्मवादकी थी। नाथ पन्थी योगी और बाबा फरीदके बाद सिख गुरु इस परम्पराके महान् वारिस थे।

पञ्जाबी कवितामें अध्यात्मवादी परम्पराको सूफी कवितासे अत्याधिक बल मिला। भाई वीरसिंहकी कवितापर सूफी-दर्शनका प्रभाव प्रत्यक्ष है।

भाई वीरसिंह सिख कवि अवश्य थे, क्योंकि सिख धर्मकी दीक्षा उन्हें घरमें अपने बचपनसे मिली थी, किन्तु समूचे तौरपर पञ्जाबी साहित्यके आदि-काव्यसे लेकर अपने समय तककी परम्पराओंको ग्रहण किया था। ये पञ्जाबी साहित्यके नवयुगके निर्माता थे। एक अच्छे वारिसकी भाँति इन्होंने पञ्जाबी कविताको पूर्व कवियोंके सदृश्य आग बढ़ाया।

१० जून, १९५७ ई. मे पञ्जाबी भाषाके इस महान् सन्त-कविका निधन पचासी वर्षकी आयुमें हो जानेसे पञ्जाबी साहित्य-मण्डलका एक ऐसा नक्षत्र टूट गया, जिसकी पूर्ति होनी असम्भव है।

● ● ●

भाई वीरसिंह

[काव्य-सञ्चय]

१. समां

रही वास्ते घत्त, समें ने इक न मन्नी।
फड़ फड़ रही धरीक, समें खिसकाई कन्नी।
किवें न सकी रोक, अटक जो पाई भन्नी।
त्रिखे अपने वेग, गया टप बन्ने बन्नी--
हो! अजे संभाल इस समें नूं,
कर सफल उदन्दा जांवदा।
इह ठहरन जाच न जाणदा,
लंघ गया न मुड़के आंवदा।

---

२. त्रेल तुपका

मोती वांगू उलकदा तुपका इह जो त्रेल।
गोदी बैठ गुलाब दी हस हस करदा केल।
वासी देश अरूप दा करदा प्यार अपार।
रूपवान है हो गया प्यारी गोद विचाल।
अरशी किरन इक आवसी लैसी एस लुकाय।
झोका मत कुई पौण दा देवे धरत गिराय।

नित्त प्यार खिच्च लयांवदा करे अरूपों रूप।
अरशी प्रीतम है कुई नित फिर करे अरूप।।

---

१. समय

मैंने बड़ी अनुनय-विनय की, किन्तु 'समय' ने मेरी एक न मानी। मैं पकड़ती ही रह गई, मगर 'समय' अपना पल्ला छुड़ा ले गया। मैंने बड़े प्रयास किए, पर उसे रोक न सकी। अपनी तीव्र गतिसे वह सब सीमाओंको लाँघता हुआ चला गया।

ऐ मनुष्य! इस गतिशील समयको तू देख। यह रुकना नहीं जानता। एक बार जो बीत गया, वह फिर लौटकर नहीं आएगा।

---

२. ओसकी बूँद

मुक्ताके समान चमकती यह ओसकी बूँद गुलाबकी गोदीमें बैठ, हँस-हँसकर क्रीड़ा करती है। अदृश्य देशका वासी यह गुलाबका फूल इसके लिए अपना सारा प्रेम उँड़ेल देता है, और वह उसकी प्रेममय गोदमें रूपमान हो गया है। सूर्यकी एक किरण आएगी। वह इस ओसकी बूँदको अपनेमें छिपा लेगी कि कहीं वायुका कोई झोंका इसे धरा पर गिरा न दे।

ऐसे ही प्रेमकी आकर्षण-शक्ति मनुष्यको अदृश्यसे रूपवान बना देती है, किन्तु उसे फिर अदृश्य बना देनेवाला कोई सर्व शक्तिमान भी है।

---

३. वलवला

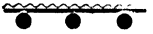

जिन्हां उच्चाईआं उत्तों,
बुद्धि खंभ साड़ ढठी,
मल्लो मल्ली उत्थे दिल,
मारदा उडारियाँ ।
प्याले अनडिठे नाल
बुल्ल लग जाण उथे
रस ते सरूर चढ़े
झूमाँ औण प्यारियाँ ।।१।।

'ज्ञानी' सानूं होड़दा ते
'वहमी ढोला' आखदा ए'—
'मारे गए जिन्हां लाईआं
बुद्धों पार तारियां।'।।२।।

"बैठ वे ज्ञानी! बुधी
मंडले दी कैद विच्च
'वलवल दे देश' साडीयां
लग्ग गईयां यारियां।" ।।३।

---

३. भाव-लोक

जिस ऊँचाईसे बुद्धि अपने पंख जलाकर धरापर आ गिरी, मेरा मन बरबस वहाँ पहुँचनेके लिए आकुल है। वहाँ किसी अदृश्य प्यालेको मेरे ओंठ छू लेंगें, तो मैं रस विभोर हो झूमने लग जाऊँगा ॥१॥

ज्ञानका दावेदार मेरा मार्ग अवरुद्धकर खड़ा हो गया है। अन्ध-विश्वासी कहता है—जो बुद्धिसे परे पहुँचनेका प्रयास करते हैं, वही गिरते हैं ॥२॥

ज्ञानके दावेदारो ! तुम बुद्धिकी कैदमें जकड़े बैठे रहो। मैंने तो भाव-लोकसे मित्रताकी गाँठ बाँध ली है ॥३॥

---

४. टुकड़ी जग तों न्यारी

अरशां दे विच्च 'कुदरत देवी' सानूं नजरीं आई।
हुस्न-मंडल विच्च खडी खेडदी खुशियां छहबर लाई।
दौड़ी ने इक मुठ भर लीती इस विच्च की की आया:
परबत टिब्बे अते करेवे विच्च मैदान सुहाया।
चश्मे, नाले, नदियां, झीलां निक्के जिवें समुन्दर।
ठंढियां छावां मिठियां हवावाँ बन बागाँ जिहे सुंदर।
बरफां, मींह, धुप्पां ते बदल रुत्तां मेवे प्यारे।
अरशी नाल नज़ारे आए उस मुठी विच्च सारे ।।१।।

सुहणी ने अस्मान खड़ाके धरती वल तका के।
इह मुठी खोहली ते सुहिया सब कुछ हेठ तकाके।
जिस थावें धरती ते आके इह मुठ डिग्गी सारी।
ओस थाँ 'कश्मीर' वण गया टुकड़ी जग तों न्यारी ।।२।।

है धरत्ती पर 'छूह अस्मानी'
सुन्दरता विच्च लिश्के।
धरत्ती दे रस, स्वाद, नज़ारे,
'रमज़ अरश' दी कसके ।।२।।

---

४. टुकड़ी जगसे न्यारी

सौन्दर्य लोकमें क्रीड़ाएँ करती, हर्षसे मदमाती, प्रकृतिकी देवी मैंने देखी। उसने अपनी मूठमें पर्वत, टीले, रमणीय मैदान और झरने नदियाँ, झीलें भर लीं। ये सब ऐसे थे जैसे छोटे-छोटे द्वीप हों। शीतल छाया, भीनी हवा और सुन्दर बनोंकी महक, हिम-कण, वर्षा, धूप और बादल, मीठे मौसमी फल——ये सभी एक दैवी दृश्य सरीखे उसकी मूठमें आ गए ।।१।।

दूर व्योमसे पृथ्वीको निहारते हुए प्रकृतिकी देवीने अपनी मुट्ठी खोल दी। जहाँपर वह मूठ गिरी, वहाँ संसारकी अनूठी टुकड़ी कश्मीर-का जन्म हो गया ।।२।।

रस, सुगन्ध और दृश्योंके आयाम लिए यह टुकड़ी देव-लोकसे धरापर उतर आई ।।३।।

———————

५. किक्कर

कढ सिरी ऊपर नूं टुरिया वल आकाशां जावाँ।
उपर नूं तकाँ रब्ब बत्रे ज्ञाति न होरथे पावाँ।
शहर गिराँ महल नहीं माड़ी कुल्ली ढोक न भालाँ।
मींह हनेरी गड़े धुप्प विच्च नंगे सिर दिन घालाँ।
लो अरश दे वाली बन्ने होर लालसा नाहीं।
गिठ थाऊ धरत्ती, तों लीती बघां, टिकां, इस माहीं।
फुल्लां, फलां, खिड़ां, रस चोवां रह अछोत तुर जावां।
कुल्ली, गुल्ली, जुल्ली दुनियां! बिन मंगें मर जावाँ।।१।।

मींह दा पीवां पाणी दुनियां पौण भखके जीवां।
सदियां तों इसथित में जोगी सदियां हवें टिकीवां।
छेडां छेड़ करावां नाहीं हां विरकत निर्गुणियाँ
मेरे जोगा बी हें पल्ले हाय! कुहाड़ा, दुनियाँ! ।।२।।

---

५. बबूल

[स्थिर एवं अडिग रूपसे खड़ा बबूलका वृक्ष अपने हृदय-तरंगित भाव व्यक्त करता हुआ कहता है।]

मैं आकाशकी ओर सिर ऊँचा किए खड़ा हूँ। भगवानकी ओर ऊपर निहार रहा हूँ। मेरी दृष्टि स्थिर नहीं है। न शहर, न ग्राम और न किसी महल या झोपड़ीकी मुझे तलाश है। मेह हो चाहे आँधी—सारा दिन नंगा खड़ा रहकर बिता देता हूँ। देव-लोकके बिना मुझे और कोई लालसा नहीं है। धरतीसे माँगकर मैंने एक हाथ भूमि ले रखी है, यहीं मैं बढ़ता हूँ और यहीं मेरा ठिकाना है। फूलता-फलता, रस टपकाता, एक दिन संसारसे बिना कुछ माँगे एकाकी चल देता हूँ ।।१।।

मैं बादलोंका पानी पी, साँसोंमें पवन भरकर जीता हूँ। सदियोंसे स्थिर खड़ा योगी हूँ। न किसीसे मेरी शत्रुता, न किसीसे मेरा बैर है। मैं तो एक विरक्त निर्गुण हूँ। फिर भी संसारकी कुल्हाड़ी सदा मेरे सिरपर रहती है ।।२।।

६. अवंतीपुरे दे खंडर

अवंतीपुरा की रह गया बाकी,
दो मन्दिरां दे ढेर।
बीत चुकी सभ्यता दे खंडर,
दसदे समें दे फेर।
साखी भर रहे ओस अख दी
जिस विच मोतियाबिन्द।
हुनर पछानण वलों छाया,
गुण दी रही न जिन्द।
'जोश-मज़हब' ते 'कदर-हुनर' दी,
रही न ठीक तमीज़।
राजी करदे होरां-ताँई,
आप् बणे मरीज़।
बुत पूजा? 'बुत' फेर हो पए,
'हुनर' न परतया, हाय!
मर मरके 'बुत' फेर उगम पए,
गुण नूँ कौण जीवाइ?

———

६. अवन्तीपुराके खण्डहर

*अवन्तीपुरा दो मन्दिरोंका ढेर मात्र रह गया है। बीती सभ्यताके ये भग्नावशेष समयके हेर-फेरकी ओर इंगित कर रहे हैं।

और मोतिया-बिन्दवाली उस आँखकी साखी भर रहे हैं, जिसे कला-कौशलकी परख नहीं रह गई है। धर्मान्ध पुजारी कलाकी कद्र करना भूल गए हैं। मूर्ति-पूजाने फिर सिर उठाया है।

किन्तु हाय! वह कला कहाँ गई? मर-मरकर 'मूर्तियाँ' जन्म आईं। कौन है, जो फिरसे 'गुण' को जीवन-दान देगा।

———

* श्रीनगर और अनन्त नागके बीचके दो प्राचीन मन्दिरोंके खण्डहर।

७. शालामार

जोगी खड़े चनार, शांति वस रही,
नहर बहे विचकार बृती प्रवाह ज्यों।
हरिया भरिया वस्त्र मखमल घाह दा,
छाइ सहज दा रंग शांति एकांत है।
फिर आई अबशार वाणी ढह पिया,
अल्प संगीत उचार मन नूं मोह रिहा।
रंग बलौरी वस्त्र डिग्गदे दा लसे,
फिर कुझ कदमां लंघ हेठां जांव दा ॥१॥
विच फुहारियां जाय उपर आंवदा,
कलावाजियां लाय उच्छले खेडदा।
लावे डाढा जोर पहल उचान नूं,
पहुंचां मार उछाल पर 'खिच' रोकदी।
उच्चा जांदा 'खिच' फिर लै डेगदी,
उछल गिरन दा नाच हैवे हो रिहा।
विच विचाल अजीब बारां-दरी है,
शाम रंग दा संग जिसतों वणी है।
इसदे चार चुफेर पाणी खेडदा;
उठण डिग्गण दा नाच नाले राग है,
मानो सावन मींह हैवे पै रिहा।
ओ अस्मानों डिग्ग हेठां आंवदा,
इह हेठों शह पाड़ उच्छल वस्सदा।
इसदी धुनि संगीत चमक सुहावनी ॥२॥
बैठियां इस विचकार फूटे देवंदी,
कुदरत मानो आप नच रही नाच है।
इह रंग राग अपार दसके नीर जी,
फिर अग्गे नूं जाय हेठां तिलकदे ॥३॥

७, शालामार

चनार-रूपी योगी खड़े हैं। शान्तिकी वर्षा हो रही है। वृतिके प्रवाहकी भाँति बीचमें नहर बह रही है। सहज-एकाग्रताके रंगमें रँगी हरी-भरी मखमली घास बिछी हुई है। झर-झर बहते झरनेके पानीका कलरव बड़ा मोहक है। बिल्लौरी रंगकी दमक लिए कुछ पग आगे फव्वारोंके ऊपरसे हो-होकर वह कलाबाजी खेल रहा है ॥१॥

वह एक अजीब उछल-कूदका नृत्य कर रहा है, चाहता है कि मैं उछलकर ऊँचा पहुँच जाऊँ, किन्तु 'आकर्षण' उसे फिर नीचे पटक देता है। बागके मध्य एक बारा-दरी है। उसके चारों ओर पानी सन्ध्याके संग मिलकर अठखेलियाँ करता है। गिरकर उठने, फिर गिरनेके ये नृत्य-संगीत ऐसे हैं, जैसे सावनकी फुहार बरस रही हो। वह आकाशसे धरापर बरसती है, यह भूमिसे राह निकाल ऊपरको उछलता है। इसकी संगीतमय ध्वनि, सुहानी चमक-दमक झूलेका-सा आनन्द देती है ॥२॥

ऐसा प्रतीत होता है जैसे प्रकृति स्वयं नृत्य कर रही हो। अपना रूप, रंग, संगीत छिड़ककर वह फिर आगेकी ओर फिसल जाता है ॥३॥

८. कंबदे पत्थर

मारतंड नूं मार पइयां
'होई मुद्दत' कहिन्दी लोई।
पर कंबणी पत्थरां विच हुण तक
सानूं सी सही होई।
'हाय, हुनर ते हाय विधा,
'हाय देश दी हालत !
'हाय हिन्द फल फाड़ियां वाले !'
हर शिल कहिन्दी रोई।

---

९. कंबदी कलाई

सुपने विच तुसीं मिले असानूं असां धा गलवकड़ी पाई।
निरा नूर तुसीं हत्थ न आए साडी कंबदी रही कलाई।
धा चरणां ते सीस निवाया साडे मत्थे छोह न पाई।
तुसीं उच्चे असीं नीवें सां साडी पेथा न गईया काई।
फिर लड़ फड़ने नूं उठ दौड़े पर लड़ आहे 'बिजलीलहरां'
उडदा जांदा, पर ओह अपणी छाहे सानूं गया लाई:
मिट्टी चमक पई इह मोई ते तुसीं लूआँ विच लिश्के,
बिजली कूंद गई थर्रांदी हुण चकाचूंध है छाई।

---

८. थरथराते पाषाण

किम्वदन्ती है कि मार्तण्ड*को भस्मसात् हुए एक युग बीत गया। थरथराते पाषाणोंने भी यही बताया। और एक-एक शिला रो-रोकर कहने लगी--

"हाय कला-कौशल! हाय देश!! तेरी यह दशा! तू छिलका उतरे फलकी भाँति टुकड़ोंमें बिखर गया!

---

९. कलाईकी कम्पन

तुम सपनेमें आए। मैंने तुम्हें आलिंगन-बद्ध कर लिया, किन्तु तुम तो अदृश्य थे। मेरी पकड़में नहीं आए। मेरी कलाई काँपती रह गई।

मैंने बरबस चरणोंपर माथा टेक दिया, किन्तु माथा बिना स्पर्शके ही रह गया। तुम ऊँचे थे, मैं नीचा। मेरे वशकी बात नहीं थी।

मैं पल्ला पकड़नेके लिए भागा। बिजलीकी लहरोंकी-सी गतिसे पल्ला उड़ गया। जाते-जाते वह अपना स्पर्श देता गया।

निष्प्राण मिट्टीमें प्राण फूंककर तुम रोम-रोममें ऐसे समा गए, जैसे बिजली कौंध जानेसे चकाचौंध छा जाए।

---

* कश्मीरके एक बौद्धकालीन सूर्य-मन्दिरका भग्नावशेष, जो कभी खगोल-विद्याका एक प्रसिद्ध केन्द्र था।

१०. इल्म, अमल

सिर कचकौल बना हत्थ लीता,
पढ़ियाँ द्वारे फिरिया,
दर दर दे टुक मंग मंग पाए,
तुन तुन के इह भरिया; ॥१॥

भरिया वेख आफ़रिया मैं सां,
जाणां पण्डित होया,—
टिके न पैर जिमीं ते मेरा
उच्चा हो हो टुरिया ॥२॥

इक दिन इह कचकौल लै गया,
मुर्शिद मूहरे धरिया :
जूठ जूठकर उस उलटाया,
खाली सारा करिया ॥३॥

मल मलके फिर धोता इसनूं,
मैल इलम दी लाही,
वेखो, इह कचकौल लिश्किया।
कँवल वांग फिर खिड़िया ॥४॥

१०. विद्या और अमल

सिरको प्याला बनाकर मैं विद्याके द्वारपर भिखारी बनकर घूमने लगा। घर-घरसे भीख माँगकर मैंने इसे ठूँस-ठूँसकर भर लिया ।।१।।

प्यालेको भरा देखकर समझा, बस मैं ज्ञानी हो गया। मेरे पैर धरा पर कहाँ टिकते? मैं ऊँचा हो, एड़ियाँ उठाए चलने लगा ।।२।।

एक दिन यह प्याला मैंने अपने मुरशिदके आगे जा रखा। उसने जूठन कहकर इसको उलटा, और खाली कर दिया ।।३।।

फिर इसे मल-मलकर धोया। विद्याका सारा मैल उतार दिया। अब इस प्यालेको देखो, कमलकी भाँति फिर खिल उठा है ।।४।।

---

११. गुलाब दा फुल तोड़न वाले नूं

डाली नालों तोड़ न सानूं,
असां हट्ट 'महक' दी लाई।

लख गाहक जे सुँघे आके,
खाली कोय न जाई।

तूं जे इक तोड़के लै गयों,
इक जागो रह जासां—

ओह बी पलक झलक दा मेला,
रूप महक नस जाई।

---

११. गुलाबका फूल तोड़नेवालेको

तू डालसे मुझे मत तोड़ ! मैंने गन्धकी दूकान सजा रखी है। सूँघनेवाले लाख ग्राहक भी आ जाएँ, तो भी मैं किसीको खाली न जाने दूंगा। तोड़ लेनेपर मैं तेरे लिए ही रह जाऊँगा। वह भी कुछ क्षणोंकी बात होगी। मेरा रूप-लावण्य एवं सुगन्ध सभी पलक मारते ही उड़ जाएँगे।

१२. पिंजरे पया पंछी

[पिंजरे दी सलाहुत करनवाले नूं]

ज़ालम खड़ा हवा खुली विच,
आखे : 'पिंजरा सुहणा'——॥१॥

'विच आ जावें फिर मैं पुच्छां,
किन्ना है मन मुहणा ?
'पर तों हीन धरा दे कैदी !
ओ मूर्ख दिल करड़े !
उड्डन हारे पंछी नूं इह,
सुहणा है जिन्द–कुहणा ।
जालम नूं रंग सोहणा लगा,
मिट्ठी लगी वाणी——
वाह वाह कदर गुणा दी पाई...॥२॥

छुह के जाली ताणी ।
पकड़ पिंजरे पाये विछोड़िया,
साक स्नेहियाँ नालों,
भट्ठ पवे इह कदर तुहाडी
खेह इस 'यारी' लाणी ।'

———

१२. पिंजरेका पंछी

[पिंजरेकी सराहना करनेवालेके प्रति]

खुली वायुमें साँस लेते हुए जालिम कहता है– पिंजरा कितना सुन्दर है! ॥१॥

"कठोर दृश्य रखनेवाले मूर्ख ! भीतर आनेपर मैं तुझसे पूछूं कि पिंजरा कितना मोहक है ! मैं पंख विहीन पंछी इस धराका बन्दी बन गया हूँ। यह मुक्त वातावरणमें उड़ान भरनेवालोंके प्राणोंका भक्षक है। सुन्दर रंग, मधुर वाणी देख-सुनकर तूने छिपकर जाल फैलाया। मेरे गुणोंकी तूने अच्छी कद्र की..., ॥२॥

सभी रिश्ते-नाते तुड़वाकर मुझे पिंजरेका बन्दी बना दिया। तेरी यह गुण-ग्राहकता भाड़में जाय। तेरे संग मैं कैसे मित्रताकी गाँठ बाँधूं !" ॥३॥

१३. ज़ीनत बेगम

सोहणे सोहणे महल असाडे
देखण आइयो सहियो !
इक तों इक चढ़ंदे नकशे,
देख देख रज रहियो,
पर इक नक़श गुप्त इन्हा विच,
हर नुकते विच लिखिया,
पढ़े बाझ उस नकश अटलमें,
सहियो न मुड़ जइयो !
ए नकशे – नक्काश रंगीला,
जदसी जांदा पांदा,
नालो नाल गै़ब तों कोई,
गुप्त नक़श इक वांदा।

उह सी नकश विछोड़ा सहियो
असां निखुटियां पढ़िया
काश ! कदे इह नकश मेरा उह,
ज़ालम बी पढ़ लैदां।

१३. जीनत बेगम

ऐ सखि ! मेरे सुन्दर महलोंको देखने आना । इनकी एकसे एक बढ़कर आकृतिको देख-देखकर तुम्हारा मन नहीं भरेगा । किन्तु इसके प्रत्येक चिह्नमें एक गोपनीय आकृति भी है, जिसे बिना पढ़े मत लौट जाना । जब नक्काश इन आकृतियोंमें प्राण डाल रहा था, तो कोई अद्‌भुत-शक्ति एक गोपनीय आकृतिको उघाड़ जाती थी ।

सखियो, अभागिन मैंने जब उसे पढ़ा, तो वह 'बिछोह' की एक आकृति थी । काश ! कभी वह जालिम भी मेरी इस आकृतिको पढ़ पाता !

———

१४. अन्दर दी टेक

सिक सिक रो रो टूंड टूंड के
मजनूं उम्र गवाई।
पर पँघर न खादी लैली,
धा उस पास न आई।
अन्त हारके बह गया मजनूं,
लैली लैली जपदा।
लिव लैली विच लग गई अन्दर,
अन्दर लैली आई। ।।१।।

लैली वी हुण खिच खाय के,
मजनूँ लबदी आई।
मैं लैली, लैली पई कूके,
मजनूं सियाण ना काई।
मैं लैली, मैं लैली कूके,
मजनूं लैली होया।
आपे प्रीतम बण गिया प्रेमी,
टेक जाँ अन्दर पाई। ।।२।।

१४. भीतरकी टेक

मजनूंने सिसकियाँ भरते, रो-रोकर सारी आयु बिता दी। किन्तु लैला न पिघली और न उसके पास चलकर आई। अन्तमें हताश होकर मजनूं लैलाका नाम लेता मौन होकर बैठ गया। लैलामें वह इतना तन्मय हो गया कि उसके भीतर लैला आ गई ॥१॥

लैला इस आकर्षणवश मजनूंको ढूंढ़ती आई। उसकी 'मैं लैला, मैं लैला' की पुकारसे भी मजनूं उसे पहचान न पाया।

मजनूं लैलाका रूप हो गया। जब भीतरकी टेक मिली, तो प्रियतम स्वयं ही प्रेमिका बन गया ॥२॥

१५. चशमा इच्छा बल ते डूंगियाँ शामां

● ● ● ●

प्रश्न :—

संझ होई परछावें छुप गये
किऊँ इच्छाबल तूं जारी ?
नें सरोद कर रही उवें ही
ते टुरनों वी नहीं हारी,
सैलानो ते पंछी माली
हन सब आराम विच जाये,
सहम स्वादला छा रिहा सारे
ते कुदरत टिक गई सारी ।

चशमे दा उत्तर :—

सीने खिच जिन्हा ने खाधी
उह कर आराम नहीं बहिंदे ।
निहुँ वाले नैणा की नींदर
उह दिन रात पये बहिंदे ।
इको लगन लगी लई जांदी
है टोर अनन्त उन्हा दी,
वसलों उरे मुकाम न कोई,
सो चाल पये निप्त रहिंदे ।

———————

१५.*इच्छा बलका झरना और गहरी सन्ध्या

प्रश्न :—

साँझ ढल आई है। साये छिप गए हैं। पर इच्छा बल तू क्यों बहा चला जा रहा है? न तो तू चुप हो रहा है और न चलते-चलते थक ही रहा है। सैलानी पंछी और माली सब विश्राम करने चले गये हैं। चारों ओर स्तब्धता छा गई है तथा समस्त प्रकृति शान्त हो गई है।

चश्मेका उत्तर :—

जिनके सीनेमें प्रगति पथपर बढ़नेकी बलवती इच्छा होती है, वे आरामसे नहीं बैठते हैं। प्रेम-भीने नयनोंमें निद्रा नहीं आती है, वे तो सदैव आँसू बहाते हैं। एक लगन उन्हें चलाए जाती है। उनकी गति अनन्त होती है। मिलनसे पहले उनका कोई पड़ाव नहीं होता। वे सदा चलते ही रहते हैं।

---

* कश्मीरका एक झरना।

१६. अमर रस

सोहणे हथ सुराही प्याला,
देख दुखी खुश होई।
खुश होई मुख वेख सजण दा,
देख सुराही रोई।
रोंदी वेख सजण हस आखे—
कौड़ी शराब न लयाया।
अमृत इह सुराही भरिया,
पिये ते जीवे मोई।
दे इक बूंद सुराहियों सानूं,
सोच समुंदर बोड़े।
बे-खुदियाँ दे चाड़ अर्श ते,
आस अंदेसे तोड़े।
रंग सुहावे ते नौरंगी,
पींग घुक्के आनन्दी।
आण हुलारे अमर सुखां दे,
मुड़न ना ऐसा जोड़े।

१६. अमर रस

प्रेमीके हाथमें सुराही और प्याला देखकर दुखियारी हर्षसे चहक उठी। वह प्रेमीका मुख देखकर तो प्रफुल्ल हो गई, किन्तु सुराहीको देखकर रो पड़ी। उसे रोते हुए देखकर प्रेमीने हँसकर कहा—

"मैं कड़वी शराब नहीं लाया हूँ। इस सुराहीमें वह अमृत भरा है, जो मुर्दोंमें भी प्राण फूंक दे।"

मुझे इस सुराहीमेंसे एक बूंद पिला दे ताकि मैं आशा-निराशाको भूलकर बे-खुदीके लोकमें पहुँच जाऊँ। वहाँ मैं सुन्दर सुहाने रंगोंवाले झूलेमें बैठकर आनन्दमय हो जाऊँ और उसकी हिलोर मुझे सदैवके लिए अमर सुखमें लीन कर दे।

१७. कशमीर तों विदैगी

सुहाणीयाँ तों जद विछुड़न लगिये,
दिल दिल-गीरी खावे।
पर तैंथों टुरदियाँ कशमीरे,
सानूं ना दुख आवे।
मटक हिलोरा छोह तेरी दा,
जो रूह साडी लीता।
खेड़े वाली मसती दे रिहा,
नाल नाल पिया जावे।

---

१८. वुल्लर

वुल्लर तेरा खुला नज़ारा
वेख वेख दिल ठरिया
खुला, वड्डा, सोहणा सुच्या,
ताज़ा, हरिया भरिया,
सुन्दरता तर रही तैं उत्ते
खुल उडारियाँ लैंदी
निर्जन फबन कुँआरी रंगत
रस अनन्त दा वरिया।

---

१७. कश्मीरसे विदाई

प्रेमियोंका बिछोह हृदयको उदासीका आवरण ओढ़ा देता है, किन्तु ऐ कश्मीर ! तुमसे बिदा होते समय मुझे कोई पीड़ा नहीं हो रही। तेरे स्पर्शकी एक हिलोर मेरी आत्मामें समा गई है; हर्ष-विभोर हुआ मैं उस अनुभूतिको अपने संग लिए जा रहा हूँ।

---

१८. वुल्लर

*वुल्लर ! तेरा सुन्दर दृश्य देख कर हृदय शीतल हो गया है। तू खुला, विशाल, सुन्दर, पवित्र ताजा और हरा-भरा है।

तू सौन्दर्यसे परिपूर्ण है। तुझमें स्वतन्त्रता विचरण कर रही है। तुझमें अदृश्य छवि एवं अछूते रंगोंकी धारा प्रवाहित हो रही है।

---

* कश्मीरका एक झरना।

१९. चाँदनी

सुइयाँ नालों निक्के निक्के
चाँदनी दे पैर सहिमो !
केलों दीआ सुइयाँ उत्ते
आन आन टिकदे ॥१॥

ऐत्थों छालां मार टप
पैंण चिट्टे पथरां ते
उत्थों कुद हेठ खड
पाणी उत्ते डिगदे ॥२॥

लहिरां दे उत्ते उत्ते
तिल मिल खेडदे नी
पोले पोले रख रख
ढुमक ढुमक ठिकदे ॥३॥

नाच करन पाणी उत्ते
लासां मारण पौण विय
चाँदनी दे नैण ऊपर
चन्द वल तकदे ॥४॥

चँद भरिया प्यार नाल
तके वल चाँदनी दे
तकदा ए सारा, सहिओ
अखही जो हो रिहा ॥५॥

चानण चन्द देवंदा जे
चानण ए आय सारा
चानणी दे चानणे नूं
वेख रीझ जे रिहा ॥६॥

१९. चाँदनी

हे सखी ! चाँदनीकी सूईसे भी छोटे पैर देवदारके नुकीले पत्तोंपर आकर पड़ते है । ।।१।।

यहाँसे छलाँग मारकर श्वेत प्रस्तर पर आते हैं और वहाँसे कूद कर नीचे खड्डके जलपर गिरते हैं । ।।२।।

लहरोंपर झिल-मिल करते हुए क्रीड़ा करते हैं और धीरे-धीरे ठुमुक-ठुमुककर कदम रखते हैं । ।।३।।

चन्द्रमाकी किरणें पानीके ऊपर इस तरहसे छिटक रही हैं मानो वे पानीके ऊपर नाचती हुई कूद रहीं हों। चाँदनीकी आँखें चन्द्रमाकी ओर देख रही हैं। ।।४।।

स्नेहसे परिपूर्ण चाँद चाँदनीकी ओर निहार रहा है और उसे देखते-देखते वह स्वयं आँख ही बन गया है । ।।५।।

चन्द्रमा ज्योत्स्ना प्रदान करता रहता है। यद्यपि वह स्वयं प्रकाशमय है, किन्तु फिर भी चाँदनीका आलोक देखकर मोहित हो रहा है। ।।६।।

चानणे दे रूप प्यार
भेजदा ए चाँदनी नूं
लगातार प्यार—मींह
चन्द हेठ दे रिहा ।।७।।

चाँदनी ना लोभ दी है
हेठां किसे प्यार होर
ध्यान चन्द विच खिच
उताहां मन लै रिहा ।।८।।

खड्डाँ नदी नालियां ते
खेत्तां बनां जंगलां ते
शहरां पिंडां समना ते
चाँदनी है पै रही ।।९।।

राजियाँ अमीरां ते गरीबां
पापी पुन्नियां दे
सारियां दे द्वारियां ते
चानणा है दै रही ।।१०।।

व्यापी सारे दिसदी है
खचत किसे विच नाहीं
ध्यान लाया चन्द विच
चन्द खिच पै रही ।।११।।

चन्द प्यारे चान्दनी नूं
चान्दनी खिचीवे चन्द
वस मात लोक स्दाद
अरशां दा लै रही ।।१२।।

———

चन्द्र प्रकाशरूपी प्यार चाँदनीको देता है एवं सतत भू पर प्यारकी वर्षा करता है। ॥७॥

नीचे चाँदनी अन्य किसीके स्नेहके वशीभूत नहीं होती है। उसका ध्यान चन्द्रमाकी ओर आर्कषित रहता है। ॥८॥

खड्डे, सरिता, नालों, खेत, वनों, जंगलों, नगरों तथा ग्रामोंपर चाँदनी छिटक रही है। ॥९॥

राजाओं, धनिकों, निर्धनों, पापियों तथा धार्मिकों––इन सबके द्वारोंपर प्रकाश दे रही है। ॥१०॥

ऐसा दृष्टिगोचर होता है कि चाँदनी सबमें व्याप्त है, परन्तु किसीमें लीन नहीं है। इसका ध्यान चन्द्रमामें लगा है और उसी ओर खिंची जा रही है। ॥११॥

शशि चाँदनीको प्यार करता है तथा चाँदनी चाँदको आर्कषित करती है एवं वह धरापर छिटककर भी आकाशका-सा आनन्द अनुभव कर रही है। ॥१२॥

२०. जांदा आप हां ओहनां दे दवार !

मैं बकरियां चार दी,
दुपहरां दे सूरज तों थकी,
चिनार दी छावें पत्थर शिला ते बैठी नूं,
मेरे राजन ! तेरे सिपाहीने
तेरा हुक्म सुनाया :—
'रात, हां अधी रात
आ महलीं, खड़का दरवाज़ा
पातशाही महल दा
पिछवाड़े पासे दा दरवाज़ा।'
खोलेगा आप आ राजा
अपने किवाड़ ।
हां रुलदीए खुलदीए ।
भा गया ए राजा नूं,
तेरा लीरां लपेटिया रूप । ।।१।।

* * *

कंबडी ते ओदरदी
कदे अमन्ना करदी
कदे हासी समझदी,
में तुर ही पई अधी, रात ।
तुरदी ते ठहरदी,
कदे ठुमकदी, कदे थिरकदी,
आ पहुंची हां तेरे दवार,
राजा जी ! खोहलो किवाड़ ! ।।२।।

* * *

२०. उनके द्वार मैं स्वयं जाता हूँ !

मेरे राजन ! बकरियाँ चराती, दोपहरीके सूर्यसे क्लान्त, चिनारकी छायामें शिलापर बैठी मुझको तेरे सिपाहीने आज्ञा सुनाई कि आधी रातको मेरे महलके पिछवाड़ेका द्वार खटखटाना। राजा स्वयं अपने किवाड़ खोल देगा। गुदड़ीमें छिपा तेरा रूप राजाकी आँखोंमें समा गया है। ॥१॥

काँपती-सिहरती, कभी राजाके सन्देशको हँसी-मजाक समझती मैं आधी रातको चल दी। ठुमकती-थिरकती तेरे द्वार आ गई हूँ। राजाजी, किवाड़ खोलो। ॥२॥

मेरे भागां ने आंदे ने मघ
आ जुड़े ने विच अकाश,
छा गया हनेरा चुफ़ेर,
आई ठोहकरां खांदी मैं ढेर
नपदी आसा दा लड़ घुट घुट
आ पहुँची हां तेरे दवार,
राजा जी ! खोहलो किवाड़ ! ।।३।

* * *

लह पईयां नी बूंदां हुण, हाय !
झुल्ल पई ए पुरे दी पौण,
मेरे राजा !
गड़कदी ए बिजली अकाश,
नाल गज्जदी ए बदलां दी फौज ।
चुंधिआंदी ए अखाँ नूं लिश्क,
पर दिखा जोंदी ए बंद किवाड़,
तेरे, राजा जी ! बंद किवाड़,
खोल अपने बंद किवाड़ ! ।।४।।

* * *

कित्थे ओ बंद किवाड़ ?
मैं तां मर गई सां तेरे दवार
तेरे देखके बंद किवाड़,
खाके मीहां दी हाय बुछाड़ ! ।।५।।

* * *

आकाशमें मेरे भाग्यरूपी मेघ छा गए हैं। चारों ओर अँधेरा घिर आया है। आशाके पल्लेको भींच-भींचकर मैं ठोकरें खाती तेरे द्वारपर आ गई हूँ। राजाजी, किवाड़ खोलो! ।।३।।

मेरे राजन! बूंदा-बाँदी हो रही है। पुरवाई चलने लगी है। आकाशमें बिजली चमक रही है। बादल गरज रहे हैं। उसकी चमक आँखोंको चकाचौंध करती हुई, बन्द किवाड़ दिखा जाती है। राजाजी, तेरे किवाड़ बन्द हैं! अपने बन्द किवाड़ खोलो!! ।।४।।

कहाँ हैं बन्द किवाड़? वर्षाकी बौछार खाकर, तेरे बन्द किवाड़ देखकर, मैं तो तेरे द्वारपर ही मर गई थी। ।।५।।

इह तां मेरी है आपणी छन्न--
कुल्ली करवां दी कानियां दी छन्न,
विच बैठे ने मेरे महाराज--
राजा जी राजा महाराज !
किंज गए हो आ मेरी करवां दी छन्न ?
किंज गई हां आ देख बंद किवाड़ ? ।।६।।

* * *

लैके झोली दे मैं विचकार
कीते राजे ने बुल्ल ओघाड़--
"जिहड़े करदे ने मैनूं प्यार
"ओह जांदे ने मेरे दवार
"किवें मिल जए ओहनां दीदार ।
"पर करदा मैं जिन्हां नूं प्यार,
"जाँदा आप हां ओह नां दे दवार--
"दवार ओहनाँ दा मेरा दवार ।" ।।७।।

यह तो मेरी अपनी झोपड़ी है ! भीतर मेरे महाराज, राजाओंके राजा बैठे हैं। मेरी तिनकोंकी झोपड़ीमें कैसे पहुँच गए ? तेरे बन्द किवाड़ देखकर मैं कैसे आ गई ? ॥६॥

मेरे राजनने अपने होंठ खोले—'जो मुझे प्रेम करते हैं, वही मेरे द्वार पहुँचते हैं, ताकि उन्हें मेरा दीदार हो जाए। पर मैं जिन्हें प्रेम करता हूँ, स्वयं उनके द्वारपर जाता हूँ। उनका द्वार, मेरा द्वार है।'॥७॥

---

२१. निकी गोद विच

अज्ज नूर दे तड़के

जदों लै रही सी सबेर अंगड़ाईयां
पहु फुटाले दी गोद विच;
इक खिड़े गुलाब दी गोद विच
तुसीं खेल रहे सओ मेरे सांईयां !
किंज, हां किंज ! आ गए सओ,
ओस निकी गोद विच ?
मेरे ऐडे वडे विशाल सांईयाँ !

———

२१. छोटी गोदमें

आज जब उषाकी गोदमें ज्योतिर्मय प्रातः अँगड़ाई ले रहा था, तब एक खिले हुए स्निग्ध गुलाबकी गोदमें तुम खेल रहे थे। तुम इतने विशाल मेरे प्रियतम्! कैसे? हाँ, कैसे आ गए उस छोटी-सी गोदमें!

---

२२. मेरा संदेश

अवे काले कबूतर !
  'जीओ आयाँ नूँ' वीर !
आइएँ मंज़िलां कट
  ते वलिखां नूँ चीर ।
लआइएँ कोई संदेश
  जो बन्हावे मैं धीर ?
नीली गानी ए गल,
  न चिट्ठी संदेश ।
अगे हँसां उदास,
  हारे होईयां दिलगीर ।
हां, मैं समझी हां वीर !
  लयाइएँ न, लैणा आईएँ संदेश । ।।१।।

* * *

मुड़िआ जाना तूं वीर
मेरे पीया दे देश,
  लैजा, मेरा संदेश । ।।२।।

चिट्ठी बन्ह दियां तेरे गल—
  "उछल उछलके नीर
  नैण बण गए फुहारे
  उछल उछलके नीर ।।" ।।३।।

———

२२. मेरा सन्देश

ओ काले कबूतर ! तेरा शुभागमन !! तू जाने कितनी मुश्किलें और मंजिलें लाँघकर आया है। क्या कोई धैर्य बँधानेवाला सन्देश लाया है ? तेरे गलेमें नीला धागा है, पर न कोई पाती है और न सन्देश। पहले ही मैं उदास थी, अब और भी अधीर हो गई हूँ। हाँ, अब समझ गई। कुछ लाया नहीं बल्कि सन्देश लेने आया है ।।१।।

मेरे प्रियके देशको लौटकर जानेवाले ! मेरा सन्देश ले जा ।।२।।

तेरे गलेमें पाती बाँध देती हूँ—

"पानी छलका-छलकाकर आँखें फव्वारा बन गई हैं, पानी छलका-छलकाकर ! " ।।३।।

———

२३. कित्थे हो ?

कित्थे हो ?
कोले हो;
कूंदे नहीं ?
कूंदे हो, पर कन्नीं सद सुणेंदी नहीं ॥१॥

कित्थे हो ?
कोले हो,
दिसदे नहीं ?
दिसदे हो, पर सूरत नैण वसेंदी नहीं ॥२॥

कित्थे हो ?
कोले हो,
मिलदे नहीं ?
मिलदे हो, पर तन नूं देह लपटेंदी नहीं ॥३॥

कित्थे हो ? मेरे सुहणे सांईं !
कोले हो मेरे प्यारे सांईं !
हओ कोले पर तड़प मिलन दी
समलेंदियाँ
समलेंदी नहीं ॥४॥

२३. कहाँ हो ?

कहाँ हो ? समीप हो, बोलते क्यों नहीं ? बोलते हो, पर कान आवाज नहीं सुनते ।।१।।

कहाँ हो ? समीप हो, दिखाई नहीं देते ? दिखाई देते हो, पर आँखोंमें सूरत समाती नहीं है ।।२।।

कहाँ हो ? समीप हो, मिलते नहीं ? मिलते हो, पर शरीरसे देह लिपटती नहीं है ।।३।।

कहाँ हो, मेरे प्रियतम ! समीप हो मेरे प्रिय !! समीप हो, पर मिलनेकी तड़प सम्हाले नहीं सम्हलती ।।४।।

२४. मेरे चप्पे लग रहे हन

मेरे चप्पे लग रहे हन
पाणियां दी छाती ते मेरी किश्ती तुरी जा रही है,
हौले हौले, सहजे सहजे, उमके रुमके।

दिन ढल गया
चप्पे लग रहे हन, किश्ती टुरी जा रही है।
हाँ, कित्थे कु ?
शामां पै गईयाँ, किश्ती चल रही है,
मेरे चप्पियाँ दे पाणी नाल लगण दी आवाज़
कह रही है--
चल चल चल चल।
हनेरा हो गया।

दूर दूर किते किते दीवे टिमकदे हन।
चप्पे लग रहे हन किश्ती चल रही है,
अजे चली जा रही है
दाता! कित्थे कु ?

तारे चढ़ आए, पाणियां विच उतर आए,
हवा रुमक पई,
तारे पाणियां नाल खेलदे हन, मेरी किश्ती दी
चाल तों बेपरवाह हन।
मेरे चप्पे लग रहे हन, किश्ती चल रही है,
दाता! कित्थे कु ?

२४. मेरे चप्पू लग रहे हैं

मेरे चप्पू* लग रहे हैं। पानीकी छाती पर मेरी नाव धीरे-धीरे मन्थर गतिसे बहती हुई चली जा रही है।

दिन ढल गया। चप्पू लग रहे हैं, नाव चली जा रही है। हाँ, कहाँ पर? सन्ध्या ढल गई, नाव चल रही है। मेरे चप्पू पानीकी छातीके संग लगकर आवाज देते हैं—चल, चल, चल, चल। अन्धकार घिर आया है।

दूर कहीं दीपक टिमटिमाते हैं। चप्पू लग रहे हैं। नाव चल रही है,.....अभी चली जा रही है। प्रियतम कहाँ?

तारे निकल आए। पानीमें उतर आए। वायु चलने लगी है। तारे पानीके संग खेलते हैं। मेरी नावकी चालसे बेपरवाह हैं। मेरे चप्पू लग रहे हैं। नाव चल रही है। प्रियतम, कहाँ?

---

* **चप्पू**—नावका वह डाँड़ जो पतवारका भी काम देता है।

चंद नहीं, सूरज नहीं, मेरी बेड़ी विच दीवा नहीं।
पाणीयां दी छाती ते कोई राह सड़क पगडण्डी
नहीं,
मेरे निताणे चप्पे हन।
पाणी बेड़ी तिलकाई जांदा है,

ज्यों ज्यों किश्ती टुरदी है,
टिमकदे चानणे दूर ही दूर जापदे हन।
पाणी ठंढे हन, लहरदार हन, हवा जिखी है,
जफियाँ पाँडी है, पर हुण ठरदे हन,
दाता! अजे कित्थे कु?

रात ढिलक पई, तारे लटक गए,
बेड़ी तिलकदी जा रही है,
पाणी चप्पियाँ दा मूँह चुंमदे हन, ते आखदे हन,
चल, चल, चल।
दस्स दाता! कित्थे कु?

चाँद नहीं, सूर्य नहीं। मेरी नावमें दीपक भी नहीं है। पानीकी छातीपर कोई रास्ता, सड़क, पगडण्डी नहीं है। मेरे चप्पू कमजोर हैं। पानी नावको फिसलाए जा रहा है।

जैसे-जैसे नाव चलती है, टिमटिमाता आलोक दूर ही दूर लगता है। बल खाता हुआ पानी शीतल है। वायु तीखी है, लिपटती जा रही है। अब हाथ ठिठुरते हैं। प्रियतम, अभी कहाँ ?

रात ढल गई। तारे लटक गए। नाव फिसलती जा रही है। पानी चप्पूओंका चुम्बन लेता हुआ कहता है—चल, चल, चल, चल। बता तो प्रियतम कहाँ ?

२५. गंगाराम

विच जंगल इक उजाड़ बड़ी,
इक तोता बैठा रोंदा है।
डर उठदा, तकदा टपदा है,
तक तक के फान्हा हुंदा है ॥१॥

खा सहिम कदे छहि बैदां है,
बन्न आस कदे तुर पैंदा है।
चक टंग कदे अख मीटे है,
थक खम्ब कदे फड़कैंदा है ॥२॥

इऊँ डावां डोलक हुंदे नूं,
भुख ग्रेह ने नाल सताया है।
पर दुख हरता इस दुखिये दा,
कई लैण सार ना आया है ॥३॥

सी पिपल इक उदार बड़ा,
कुज दूर सुहावा लहर रिहा।
इक डार उडंदी तोतियाँ दी,
इस ते आ बैठ अराम लिया ॥४॥

झुम झुमण डाल हिलंदीयाँ ते,
टुक गोल्हां खाणा अचिन्त बणे,
खुश हो हो चहि चहि शोर करन,
फिर चार चुफ़ेरे नज़र लड़े ॥५॥

२५. गंगाराम*

बियावान जंगलमें बैठा एक तोता रो रहा है। भयसे वह चौंक उठता है। उछलता है। इधर-उधर देख-देखकर बेचैन होता है ॥१॥

ठिठुरता-सिकुड़ता कभी बैठ जाता है। कभी आशाका पल्ला पकड़े चलता है। टाँग उठाकर कभी आँख मींच लेता है और थककर कभी पंख फड़फड़ाता है ॥२॥

ऐसी घबराहटमें भूख-प्यास सताने लगती है, किन्तु इस दुःखीका दुःख मिटानेवाला कोई नहीं आया ॥३॥

एक विशाल पीपलका पेड़ कुछ ही दूरीपर खड़ा लहरा रहा था। उड़ान भरती तोतोंकी एक पंक्ति उसपर विश्राम करनेके लिए आकर बैठ गई ॥४॥

बेपरवाह तोते जब पिप्पली (पीपलके फल) खाते हैं तो पेड़की डाल झूम-झूम जाती है। चहचहाते, शोर करते वे चारों ओर निगाह दौड़ाते हैं॥५॥

---

*पालतू तोतेको गंगाराम या मियाँ मिट्ठू कहा जाता है। भाई वीरसिंहने इस कवितामें एक पराधीन तोतेके माध्यमसे स्वाधीनताकी महिमा गाई है।

इक तोते डिठा दूर बड़ी,
कुई वीर असाडा विलख रिहा।
विच दुख तसीहे पिया किसे,
खम्ब हुंदियां ते है ढिलक रिहा ।।६।।

इह मार उडारी पास गिया
जा कंहिँदा : तूं क्यों सिसक रिहा ?
हैं दुखिया क्यों दुखियार बड्डा
विच सहिम उदासी बुसक रिहा ? ।।७।।

आ मार उडारी नाल मेरे,
लै चलाँ उपर बृछ बड़े।
मत ऐथों बिल्ली कुत्ता आ,
निज पेट भरन नूं चक खड़े" ।।८।।

सुण तक कहे वल बृछ जरा
'की मैं जा उथे सकदा हाँ ?
कुई चुकण वाला नाल नहीं
मैं सोच सोचणो झकदा हाँ।" ।।९।।

'शिह', तोता कंहिँदा झिड़क ज़रा,
'तूं उड़ परां नूं मार भरा।'
पर मारे पर उड़ सके ना,
हो गंगाराम लचार रिहा ।।१०।।

ए हाल अणोखा तोते ने
नहीं अगे सुणिया डिठा सी,
उड गिया भरावाँ दसण नूँ
इह नवां सुआदल चिट्ठा सी ।।११।।

एक तोतेने देखा, कुछ दूरीपर उनका कोई भाई बिलख रहा है। किसी यन्त्रणा, पीड़ामें जकड़ा, पंख होते हुए भी पंख विहीन लग रहा है ॥६॥

तोता एक उड़ान भरकर उसके पास जाकर बोला—"तू क्यों सुबक रहा है? इतना दुखी क्यों है? उदासी और भयसे कैसे काँप रहा है? ॥७॥

चल मेरे साथ उड़ चल। मैं तुम्हें उस पेड़के ऊपर ले चलूंगा। कहीं ऐसा न हो कि यहाँसे कोई बिल्ली-कुत्ता अपनी उदर-पूर्तिके लिए तुम्हें उठा ले जाए।" ॥८॥

अशक्त तोतेने उस पेड़की ओर देखकर कहा—"क्या मैं वहाँ जा सकता हूँ? कोई उठानेवाला साथ नहीं है। यही सोचकर हिचकिचा जाता हूँ ॥९॥

तोतेने डाँटकर कहा—"छिः तू पंख तो मार!" पंख फड़फड़ाने पर भी गंगाराम उड़ न सका। लाचार होकर बैठ गया ॥१०॥

ऐसी अनोखी बात तोतेने न पहले सुनी थी, और न देखी थी। वह अपने साथियोंको यह मजेदार किस्सा बतानेके लिए पेड़पर गया ॥११॥

जा सारा हाल सुणाया सू,
सुण डार हिठाहां आई गई।
तक सब ने आखिया 'तोता है ?'
'की सिर इस आये बलाय पई ?' ॥१२॥

इक कंहिँदा साविया वे !
'तूं क्यों ए चाल बणाई ए ?
'विच सहिम घुटिया दबक रिहा
'क्यों उडण बाण भुलाई है ?' ॥१३॥

रो कंहिँदा गंगा राम 'बई !
'मैं वतनों बिछुड़ बेहाल बड़ा,
'भुख त्रेह ने मार मुकाया हाँ,
'दुख सहिम पिया सिर आण कड़ा।' ॥१४॥

इक तोता कंहिँदा 'दस बई !
'कुज हाल वतन दा अपणे नूं ?
'विच बिरहों जिस दे रोंदा हें ?
'विच पहुँचण चाहें जिसदे तूं !' ॥१५॥

सुण आखे गंगाराम 'सुणो !
मैं देव-लोक दा वासी हाँ।
सुख मौज बहारां भोग बड़े,
दिन रात रहां विच हासी सां।' ॥१६॥

इक तोते टुकी बात कहे,
'इस थां ते रहणा ठीक नहीं;
उड चलो उताहां पिपल ते,
गल बाकी उथे चल सही।' ॥१७॥

उसने जाकर सारी बात बताई। सुनकर तोतोंकी कतार पेड़से नीचे उतर आई। सबने देखकर कहा—"है तो तोता; इसके सिरपर क्या बला आ पड़ी है?" ॥१२॥

एक बोला—"सुन ओ भाई! तूने अपना यह क्या हाल बना रखा है! भयभीत-सा क्यों दुबका जा रहा है। उड़नेकी रीति तू क्यों भूल गया" ॥१३॥

गंगाराम रोकर कहने लगा—"अपने देशसे बिछुड़कर मैं बहुत बेहाल हूँ। भूख-प्यासने मुझे निढाल बना दिया है। दुःख और भयसे मरा जा रहा हूँ।" ॥१४॥

एक तोता बोला—"हाँ भाई! तू अपने देशका कुछ हाल तो कह? तू कहाँ पहुँचना चाहता है, और किसके बिछोहमें रो रहा है?" ॥१५॥

सुनकर गंगाराम बोला—"सुनो, मैं देव-लोकका वासी हूँ। रात-दिन मौज-बहारोंकी दुनियामें विचरता था ॥१६॥

एक तोतेने बीचमें ही बात टोक दी आकर कहा—"यह स्थान ठीक नहीं है। उड़कर ऊपर पीपलपर चल बैठें। वहाँ चलकर बातें करेंगे।" ॥१७॥

उड डार चली पर गँगू जी,
उड सकण न फड़फड़ करदे हैं।
पर सावे वीर उडावण दी,
विधि उस दे मन ते धरदे हैं। ॥१८॥

कोई कहे, 'खलार परां नूं तूं'
कोई कहे, 'हिक दा ज़ोर भरीं।'
कोई कहे, 'हँमला मार ज़रा,
कोई कहे, 'रिदे तों भरम हरीं।' ॥१९॥

'कर पक भरोसा आपणे ते,
समर्थ आप तूँ उडण नूं।
फिर होय अचिन्त चला चल तूं,
कर दूर दिलों डर डिगण नूं।' ॥२०॥

इउँ हिम्मत हिया दान करन,
कुज ढोल नाल सिखलांदे हैं।
कुज डिगदे नूं दे आसरा उ,
उस पिपल ते लै जांदे हैं ॥२१॥

इक तोते आखिया 'गोहल छको'
'ढिड भुखा फल दे नाल भरो'
'रज जावो जदों निहाल करो,'
'उस देव-पुरी दे हाल ररो।' ॥२२॥

टुक गोहल सु गंगाराम लई
पर स्वाद ना आया सिट दई,
फिर होर लई, टुक सिट दई
नक वट कहे— 'ए स्वाद नहीं।' ॥२३॥

तोतोंकी कतार उड़ चली। गंगाराम अपने डैने फड़फड़ाकर रह गया। दूसरे तोते उसे उड़ान भरनेकी विधि सिखलाने लगे ॥१८॥

किसीने कहा--'डैने फैला।' कोई कहने लगा--'छातीपर जोर दे।' किसीने कहा--'जोर लगा।' कोई कहने लगा--'दिलका भ्रम मिटा दे।' ॥१९॥

'हृदयमें विश्वास जगाकर, डैनोंमें वायु भरकर तू निश्चिन्त उड़ चल। दिलसे गिरनेका भय निकाल दे।' ॥२०॥

इस भाँति साहस प्रदान कर उसे कुछ ढंग बतलाते हैं। उस गिरते हुए को सहारा देकर पीपल पर ले जाते हैं ॥२१॥

एक तोता बोला'--पिप्पली खाओ।' इस फलसे पेट भर लो। पेट भरने के बाद हमसे उस देवपुरीका हाल कहो ॥२२॥

गंगारामने पिप्पली मुँहमें डाली, पर फीकी लगनेपर फेंक दी। फिर और ली। वह भी फेंक दी। नाक-भौं सिकोड़कर कहने लगा--'यह फीकी है।' ॥२३॥

पर ज़ालम भुखा पेट बुरा
बिन झुलके करे अराम नहीं ।
सो रोंदे धोंदे गंगू ने कर
उगल निगल खा गोहल लई ।।२४।।

हुण पुछ्ण हाल विलायत दा
उह गंगू नाल स्वाद कहे :—
" मैं देवतियाँ विच वसदां सां,
जित्थे जीवन सदा अचिन्त रहे ।
मैं वसणे नूं इक महल सिगा,
जो लोहे नाल बणाया सी ।
इस अन्दर बैठया निर्भय सां,
कुई वैरी निकट न आया सी ।
कुई भन्न न इस नूं सकदा सी,
फिर पौण अजायब वगदी सी ।
ते चूरी मिट्ठी मिलदी सी,
जो बहुत स्वादी लगदी सी ।
कई मेवे मिरचाँ मिलदे सन,
कई भोजन सोहणे आंदे सी ।
कई प्यार लाड नित हुंदे सी,
कई लोको गीत सुणांदे सी ।
दिन रात मौज ही रहिँदी सी,
कुई मुशकल कदे ना पैंदी सी ।
नहीं चिन्ता आके खंहिँदी सी,
मैं लोड़ उहना सिर बैहँदी सी " ।।२५।।

किन्तु जालिम भूखा पेट बुरा है। इसे बिना फुल्का दिए आराम कहाँ है। सो, रो-धोकर गंगू पिप्पली निगल ही गया ॥२४॥

अब विलायतका हाल पूछनेपर गंगू चस्के के साथ कहने लगा—"देवताओंमें मेरा बसेरा था, वहाँ जीवन चिन्ताओंसे मुक्त रहता है। मेरे निवासके लिए एक महल था, जो लोहेसे बना था। उसके अन्दर मैं निर्भीक बैठा रहता था। न कोई शत्रु समीप आ सकता था और न कोई उसे तोड़ सकता था। फिर वायु भी अजीब लगती थी और बहुत स्वादिष्ट मीठा मलीदा मिलता था, कई प्रकार फल भी मिलते थे। कितने प्रकारके सुन्दर भोजन आते थे। नित्य लाड़-प्यार मिलता था। लोग गीत सुनाते थे। रात-दिन मौज थी। कभी कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती थी और किसी चिन्ताने भी कभी नहीं सताया था" ॥२५॥

इह कहके गंगा राम हुरीं,
'लट पंछी पट पट' पड़दे सी।
'खा चूरी' मुड़ मुड़ कहँदे सी,
'कई टपे यादों जड़दे सी ।।२६।।

इह भयानक बोली डहिस भरी,
सुण कम्बी सारी डार बड़ा।
कुझ समझ सके ना की होया,
इह की बकदा है सबज़ चिड़ा ।।२७।।

जद चुप होई तद सोच पई,
सब फिकर दुड़ांदे थके ने।
नहीं समझ पिया जो उस किहा,
फिर पुछां पुछ पुछ अके ने ।
कुझ सियाणे तोते उड गये,
इक सिमल दा सी बृछ बड़ा।
इक बहुत पुराणे तोते दा,
खोह इस दी बिच सी इक घुरा।
जा सबने सीस निवाया ए,
ते सारा हाल सुणाया ए।
फिर पुछिया—'बाबा दस असाँ
'की तेरी समझे आइया ए?' ।।२८।।

यह कहकर गंगाराम 'लट पंछी पट-पट'* रटने लगता था। बार-बार कहता था—'खा मलीदा' और कई टोटके सुनाने लग जाता था ॥२६॥

यह भयंकर बोली सुनकर सभी तोतोंको कँपकँपी छूट गई। उनकी समझमें कुछ भी नहीं आया कि हरा तोता क्या बक रहा है? ॥२७॥

खामोशी छा जानेपर सोचते, चिन्ता करते सब थक गए। उसने जो कुछ कहा, किसीकी समझमें नहीं आया। फिर जब पूछ-पूछकर ऊब गए, तो कुछ समझदार तोते उड़ गए। सेमलका एक बहुत बड़ा पेड़ था। उसमें एक बूढ़े तोतेने अपना कोटर बना रखा था। सब जाकर नतमस्तक हुए और सारी बातें बताकर पूछा—"हमें बता बाबा, कुछ तेरी समझमें आया है।" ॥२८॥

---

* पिंजरेमें गंगारामको सबसे पहले यही सिखाया जाता है—
"लटपट पंछी चतुर सुजान। सबका दाता श्री भगवान। पढ़ गंगाराम!"

उस बुड्डे कई जमाने वर्ते,
दुनियाँ दे विच डिठ्ठे से।
कई हाल सुणे ते पुछ्छे से,
कई वाचे पिछ्ले चिठ्ठे से।।
'हुँ' कंहिदा खोड़ों निकलया सी,
ते उड पिपले आइया सी।
तक उपरे आये तोते नूँ,
इक डूँघा ध्यान जमाया सी।।
झट ताड़ गया रंग पिल्ला है,
ते हिल्लण जुल्लन ढिल्ला है।
अख दबक दबक के तकदा है,
जियों सिर ते हर दम बिल्ला है।।
बुल ढिलके मत्थे जोत नहीं,
बिच खम्बा खिचवीं ताण नहीं।
निज ताकत दी कुई शान नहीं,
कल चढ़दी दी कुई आन नहीं ।।२९।।

उस बाबे बुड्डे शक पिया,
है कैद पिया या दास रिहा।
नहीं देव-लोक दे पास गिया,
लै ऐंवे उभे सास रिहा।
फिर नाल पियार दे बोल पिया,
'दस बच्चू बरखुरदार बड़े!
'तैं देव-लोक तो बिछुड़ कदों,
'दे लीते सिर ते दुख कड़े?' ।।३०।।

उस बूढ़ेने जमानेके सारे उतार-चढ़ाव देखे थे। सारी दुनियाँ छान रखी थी। 'हूँ' कहकर वह अपनी खोहसे निकला, और उड़कर पीपलके पेड़पर आ गया। उस पराये-से लगनेवाले तोतेपर एक गहरी दृष्टि डालकर वह उसी समय भाँप गया—रंग पीला है। अंगोंमें ढीलापन आ गया है। आँखोंमें भय-सा समाया हुआ है, जैसे सिरपर कोई बिल्ली हो। होंठ ढुलक गए हैं। माथा ज्योतिहीन है। डैनोंमें कोई तनाव नहीं। स्वयंकी भक्तिमें न तो विश्वास है, न कोई स्वाभिमानका चिह्न शेष है ॥२९॥

उस बूढ़े तोतेको सन्देह हुआ—या तो यह बन्दी रहा है, या दास, देव-लोकका वासी नहीं है। इसकी साँस तो देखो, कैसी फूल रही है। फिर विनम्रतासे उसने पूछा—"प्रिय! बता तो, तूने देव-लोकसे बिछुड़कर ये मुसीबतें कबसे मोल ले लीं?" ॥३०॥

रो गँगू आखे 'सैर करन
टुर देव-बाल अज आये सी,
चुक मैंनूं नाल लिपाये सी,
फिर खेडीं सब लुभाये सी ।
उह खेड खिडँदे चुहल भरे,
ते टपदे नचदे दौड़ रहे,
छड मैंनूं किदरे निकल गये,
मुड़ उस थाहूँ नहीं परत लहे ॥३१॥

'उह गये किसे वल होरस नूं,
पट पट के अँखीं वेहदां सां,
फिर टुर टुर थां थां लबदा सां,
मैं हारिया भाल करेंदां सां ।' ॥३२॥

'हूँ'—बुड्ढा कंहिँदा—'दस बई !
तूं देव-लोक नूं जाणा है ?
कि रहके जंगल वांग असां
बन बन दा मेवा खाणा है ?' ॥३३॥

'हाँ, देव-लोक नूं जाणा है ।'
कहे गँगू 'राह दसाइया जे
इस डावां डोल विलायत तो
मैं देश विखे अपड़ाया जे ।' ॥३४॥

'की उथे मिलदा खोपा है ?
की फल बदाम दा सोमा है ?
की उथे स्वादल पौण वहे
की चलदी गंगा गोमा है ?' ॥३५॥

गंगाराम रोकर कहने लगा—'आज बच्चे सैर करनेके लिए आए, तो मुझे भी उठाकर साथ लेते आए। वे सब खेलमें लीन हो गए। खेलते-खेलते वे जाने मुझे छोड़कर किधर निकल गए। फिर उस जगह लौटकर नहीं आए ॥३१॥

वे किसी दूसरी ओर निकल गए। मैं आँखें फाड़-फाड़कर इधर-उधर उन्हें देखता रहा।" ॥३२॥

'हूँ'—बूढ़े तोतेने फिर कहा—'तू हमें बता, देव-लोकको जानेकी इच्छा है, या जंगलमें हमारी भाँति रहकर भाँति-भाँतिके फल खाकर जीना चाहता है?' ॥३३॥

गंगाराम बोला—'मैं देव-लोकको जाऊँगा। मुझे रास्ता बता दो। इस अस्थिर विलायतसे मुझे मेरे देश पहुँचा दो।' ॥३४॥

'वहाँ क्या गरीका मोल मिलता है? क्या वहाँ बादामके फलका स्रोत बहता है? वहाँ क्या भीनी वायु बहती है, या गंगा-गोमती बहती है?' ॥३५॥

इह कहके बुड्ढे तोते ने,
चोफेरे नज़र दुड़ाई सी,
वल डार आपणी 'ध्याण करो'
इक ऐस अख तकाई सी ॥३६॥

सुण गँगू कंहिंदा 'आखां की'
कुज बोलिया किहा ना जांदा ए,
रस आवे वेखिये अखीं जे,
बिन डिट्ठे समझ ना आंदा ए ॥३७॥

उस बुड्डे तोते 'ठीक' किहा ।
'नहीं डिट्ठे वरगा सुणिया हो;
जो हड्डीं आके वरतिया ना,
की नाल खियालाँ पुणियां हो,
पर तद वी सोय बड़ी शै है
इक सच झूठ दा तक्कड़ है
कर दसदी निर्णय सुणियां दे,
की सच जचे की जक्कड़ है ?
मैं पुछ्छाँ जो कुज पियारे जी !
दे उत्तर असां निहाल करो,
इस जंगल वासी पशुआँ नूँ
कुझ मत्त दिओ खुशहाल करो ॥३८॥

जो मंदर सुन्दर मिलिया सी
बिच जिसदे सुखिये वसदे से,
की वन्द चुतरफ़े होया सी
या उस नूं इक दो रसते से ?' ॥३९॥

यह कहकर बूढ़े तोतेने अपने चारों ओर निगाह दौड़ाई। तोतोंकी कतारकी ओर संकेत किया कि जरा ध्यान करो ।।३६।।

गंगाराम बोला—'क्या कहूँ। कहने-सुननेकी बात नहीं। अपनी आँखों देखकर ही पता चलता है। बिना देखे, कुछ समझमें नहीं आता।' ।।३७।।

बूढ़ा तोता बोला—'ठीक है, देखने-सुननेमें अन्तर है। जो अपने साथ नहीं बीती, सुनी बातका क्या मूल्य है? फिर भी सोच-विचार बड़ी चीज है। एक सच-झूठका तराजू भी है, जो सुनी बातका निर्णय देनेकी क्षमता रखता है। मैं जो कुछ पूछूँ, उसका उत्तर देकर निहाल करना। हम जंगलके जीव कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे।' ।।३८।।

'हाँ, तो जो निवासके लिए मन्दिर मिला था और जिसमें रहकर तुम सुखी थे—क्या वह चारों तरफसे बन्द था या उसके दो रास्ते थे?' ।।३९।।

गँगू— इक रसता उमदा हैगा सी,
पर बन्द सदा उह रैदां सी।
मत कोई मैंनूं खा जावे,
इस गल तों सुखिया सैदां सी।
सन रसते चार चुफेरे वी,
धुप पौण खुली आ जांदी सी।
डर मैंनूं रता ना रैदां सी,
कुई आण बला न खांदी सी ॥४०॥

बुड्ढा तोता—पर दसीं ताकी मंदर दी
वस किस दे खोलण मारण सी?
जे वस ना तेरे रखी सी
तां इस दा कहु की कारण सी?
जे जिउड़ा चाहे निकलण नूं
कोई तेरी आखी मनदा सी?
जां बझा मरजी दूये सी
तूं विच पिया सिर धुनदा सी?
जो तूं दरवाजे दसदा हैं,
की उस तों बाहर आंदा सैं?
जां विचे रहके, उहना तों
दर्शन ही देंदा – लैंदा सैं? ॥४१॥

गंगाराम—सी देवतियां दे वस सदा,
वस मेरे रखण माड़ा सी।
उह बन्दी नां, इक राखी दा,
मैं द्वाले तकड़ा वाड़ा सी।
उह रसते मौज बहाराँ दे,
वा चानण स्वादा देंदे सन।
पर मैंनूं अन्दरे रखदे सन,
उह दाते रख करेंदे सन ॥४२॥

गंगाराम—उसका एक ही रास्ता था, जो हमेशा बन्द रहता था। मुझे कोई खा न जाए, इस बातसे निश्चिन्त होकर मैं सोता था। रास्ते तो चारों तरफ और भी थे। खुली धूप आती थी। मुझे किसी प्रकारका भय नहीं रहता था। न कोई बला ही मझे पकड सकती थी ॥४०॥

बूढ़ा तोता—यह तो बता, मन्दिरकी खिड़की खोलने और बन्द करनेका अधिकार किसके पास था ? तेरे वशकी अगर बात नहीं थी, तो इसका क्या कारण था ? यदि तेरा दिल बाहर निकलनेको चाहता था, तो क्या तेरी बात कोई मानता था ? या फिर तू परायोंके आधीन सिर खुजलाता ही रह जाता था ? जो द्वार तूने बताये, क्या उनमेंसे कभी बाहर भी आता था, या भीतर रहकर ही दर्शन देता-लेता था ? ॥४१॥

गंगाराम—सब कुछ देवताओंके वशमें था। मेरे वशकी कोई बात नहीं थी। मेरे गिर्द एक तगड़ा बाड़ा था। वे मौज-बहारके रास्ते वायु, प्रकाश और आनन्द देते थे। पर मुझे भीतर ही रखते थे। मेरे मालिक मेरी रक्षा करते थे। ॥४२॥

बुड्ढा तोता—जो अमृत खाणे मिलदे से,
उह देंदे तैनूं आपे सी,
या मुँह मंगिया वी देंदे सी
जो तैनूं लगदे माँपे सी ।।४३।।

गंगाराम—जो भावे उहना माँ पिया नूं
निज बालां वांगू देंदे सी,
मैं मंगण कोलों संगदां सां
जो चाहुण आप करेंदे सी ।।४४।।

बुड्ढा तोता—जे बाल कदे कोई उन्हाँ दा
तैं नाल खेंडदा हसदा सी,
ते तैथों चक वडीदां सी
उह जा माँ पिया नूं दसदा सी ।
तद तैनूं सोटी पैंदी सी
ते चूरी बन्द रहाँदी सी ?
जा गल न गउली जांदी सी
कुई आफ़त सिरे न आंदी सी ? ।।४५।।

गंगाराम—जे मैं अपराध कमादां सां,
तद कीते दा फल पांदा सां ।
पर मैं बीबा बण रहिदाँ सां,
वस लगदे नहीं दुखादां सां ।
इह कंहिदाँ 'लटपट पंछी' वी,
फिर गंगू बोलो पांदा ए ।
सुण तोता धौण उठांदा ए,
ते अगली गल चतांदा ए ।।४६।।

बूढ़ा तोता—जो अमृत-रूपी भोजन तुझे मिलते थे, क्या वे स्वयं देते थे, या माँगनेपर मिलते थे? जो तेरे माँ-बापके समान थे। ॥४३॥

गंगाराम—उन माँ-बापकी जो इच्छा होती थी, अपने बालकोंकी भाँति मुझे खानेको मिल जाता था। माँगनेसे मैं लजाता था, जो देना होता, वे स्वयं ही दे देते थे। ॥४४॥

बूढ़ा तोता—यदि अपने संग खेलते उनके किसी बालकके तू काट बैठता था और वह जाकर माँ-बापको बता देता था, तो तुझे पीटा जाता और मलीदा बन्द कर दिया जाता था? या फिर बात टाल दी जाती थी। और तेरे सिर कोई मुसीबत नहीं आती थी? ॥४५॥

गंगाराम—यदि मैं अपराध कर बैठता था, तो उस कियेका फल भी मिल जाता था। पर मेरा जहाँ तक वश चलता, मैं किसीका दिल नहीं दुखाता था। यह कहकर गंगाराम "लटपट पंछी" की बोली बोलने लग जाता है। सुनकर तोता गर्दन खड़ी कर लेता है और बात आगे बढ़ाता है। ॥४६॥

बुड्डा तोता—इह बोली जिस विच बोले तूँ
इह देव लोक दी वाणी है ?
की रमज़ बी दसी तैनूं है
या कंठ करन दी ठाणी तैं ?
जे समझे तां समझावीं तूँ
की इस दा सिट्टा जाता ऐ ?
की मेत समझ तूं लीते हन
की वित्तो वध पछाता ए ? ।।४७।।

गंगाराम—मैं समझ नहीं मैं की बोलां,
जो बोलण सोई नकल करां ।
उह रीझण एन्हा नकलाँ ते,
मैं खुशी करन दी अकल कराँ ।।४८।।

इह सुणके तोता हस पिया,
सिर फेर डार नूं कहिंदा है ।
'कुझ समझिया बरखुरदारो जे,
किस थां ए पियारा रंहिँदा है ?
नहीं देव-लोक दा वासी है,
नहीं देवां रसते पाया है ।
उस मानुख टुरदे धरती ने,
विच बन्दी कैद रखाया है ।' ।।४९।।

बूढ़ा तोता—जो बोली अब तू बोल रहा है, क्या यह देव-लोककी वाणी है ? इसका कोई रहस्य तुम्हें बताया गया है या रटी-रटाई है ? यदि तू समझता है, तो हमें भी बता कि इसका क्या अर्थ हुआ ? क्या सब रहस्य तूने जान लिये हैं, और जिसकी पहचान करनी थी, कर चुका है ? ॥४७॥

गंगाराम—मुझे स्वयं को पता नहीं कि मैं क्या बोलता हूँ । जो वे बोलते हैं, उसकी नकल करना मुझे आता है । वे मेरी नकलपर प्रसन्न होते हैं । मेरा काम उन्हें प्रसन्न रखना है ॥४८॥

यह सुनकर बूढ़ा तोता हँस दिया । फिर तोतोंकी कतारको सम्बोधित करते हुए कहने लगा—'कुछ समझमें आया चिरंजीवियो ! यह अपना भाई कहाँ रहता है ? यह किसी देव-लोकका वासी नहीं । न यह देवताओंके मार्गका ही अनुयायी है । यह तो धरतीके मनुष्यों द्वारा बन्दी बनाकर रखा गया एक तोता है !' ॥४९॥

हो अचरज सारे तरवक गये,
पये बिट बिट सारे तकदे हैं।
वल बाबे मुड़ वेंहदे हैं,
वल गंगू तकदे जकदे है।
पा गँगू घूरी वेंहदे हैं,
फिर हेठां नज़र दुड़ांदे हैं।
मत किदरे ढूँड करेंदा जे,
कोई वतनी तुरिया आवे है।
हुण बुड्ढे तोते आह भरी,
फिर नैण अकाश उठांदा है।
जो अखी कदे ना रोंदी सी,
दो हँझू भरके लांदा है।
ना रमज़े चम्मे नैण लदे,
उ उढे रसीले रंग वरे।
विच गड अकाशा अदब भरे,
उह बाबा ऐं अरदास करे ॥५०॥

हे सब तों उच्चे उड्डण वाले,
अरशां तो वी परे परे।
उच्चे वसे बिना आलणे,
बिन खम्बाँ तर गगन रहे।
पौण, अकाश, धरती तलि पाणी
हर थां तो दिल-पीड़ सुणो,
सुण अरदास पशु दी, दाते!
कदे ना रखी मिहर खुणों।

आश्चर्य-चकित हो सभी चौंके। एक दूसरेकी ओर देखने लगे। कभी बूढ़े तोतेको, कभी गंगारामको देखते हुए झेंपते हैं। गंगू माथेपर तेवर डालकर इधर-उधर निगाह दौड़ाता है कि कहीं उसकी खोज-खबर लेनेवाला कोई देश-वासी चला आ रहा, दिखाई पड़ जाए। अब बूढ़ा तोता एक निःश्वास लेकर अपनी आँखें आकाशकी ओर उठाता है। जो आँखें कभी रोई नहीं थीं, उनमेंसे आँसुओंकी दो बूंदें ढुलक पड़ती हैं। वे रसिया आँखें एकटक आकाशकी ओर लगी प्रार्थनामें जुड़ जाती हैं ॥५०॥

ऐ सबसे ऊँचे! देव-लोकसे भी परे बसनेवाले!! हम बिना घोंसले, पंख-विहीन आकाशके वासी हैं। पवन, पानी, धरती और आकाशकी तुम पीड़ा पहचानते हो। मुझ पशुकी भी प्रार्थना सुनो प्रियतम! अपनी कृपा-दृष्टिसे हमें कभी वञ्चित न करना।

सानूँ रख सुतँतर दाते,
बंदी साथो दूर रहे,
परतन्तर ना कदे करावीं,
खुल दा सदा शऊर रहे।
मुँह तकिये ना कदे कैद दा,
कदे गुलामी आवे नाँ,
दास बणा न खिदमत पावीं,
साडी खुल खुहावीं नाँ।
दूये दे वस पाके सानूँ,
मन दी मोज गुवावीं ना।
आजादी हक तेरा दित्ता,
सब नूँ दान कराईं तूँ।
वृठ प्रभु ए दात न खुस्से,
दित्ती दई रहाई तूँ।
मरज़ी हेठ किसे दी मरज़ी,
धक्के नाल न लगे कदी।
जंगल वासा बेशक देवीं,
माड़ी महल न शहर दईं।
तन नूँ कजण खुशी मिले पर,
खुल कदे ना खस लईं।
बेशक साडी चोग खिलारीं,
हफ हफ दिन पेट भरे।
पेट भरे चहि ऊणा रह जये,
खुल ना साडी कदे मरे

सदा हमें स्वतन्त्र रखना। बन्दीखानेसे हम कोसों दूर रहें। पराधीनता कभी न दिखाना। खुले आकाशमें हम सदा अपने पंख फड़फड़ाते रहें। कभी किसीके दास न बनें और न ही हमें कोई पिंजरेका कैदी बनाए। दास बनकर कहीं हमारी स्वाधीनता न छिन जाए। परायेके वशमें जाकर हम अपने मनकी मौज न खो दें। स्वाधीनताका जो अधिकार हमें दिया है, वह सबको देना। हमारी इच्छाओंको कोई जबरदस्ती कुचल न सके। न कोई बाधा पहुँचाए। न हमें कोई ठग सके। हम जंगलके वासी भले, हमें महलों, नगरोंकी इच्छा नहीं। शरीरको ढाँकनेके लिए खुशी काफी है, पर हमारी स्वतन्त्रता बनी रहे। भले ही हम सारा दिन चोगा* चुग-चुगकर अपना पेट भरें, या खाली रह जाएँ। हमारी आजादी न छीनना!

---

* चोगा—पक्षियोंके चुगनेका चारा।

रूखो रुख फिरावीं सानूं,
डालों डाल उडावीं सानूं।
धोके धोक टपाके सानूं,
कौड़े फली रिझावीं सानूं।
बन, परबत, जल, बनीं, पहाड़ीं,
रेत थलीं थाँ देवीं तूँ।
खुल जु दित्ता हक सभस नूं,
देके कदी न लेवीं तूँ।
आन बान दिल शान असाडी
तेरे ताण रखावीं तूँ।
प्यार आपणे बाफ, प्रभु तूँ,
दूजी कैद ना पावीं तूँ।
कैद करन ते आखण राखी,
दर्शन देव करावीं नाँ।
पाण पिंजरे वेण चूरियां,
ऐसे सखी मिलावीं नाँ।
खम्ब असाडे, पैर असाडे,
दिल साडे नूं रोक करे।
धरमी ऐसे असां न मेलीं,
डोर पाय हथ वाग फड़े।
खुले उडदियां, मौज फिरँदियां,
बाज कि बिल्ला आण पवे।
मदद विहूणे राखीं बाझों,
कुल सारी चहि नाश हुये।
जद तक इक असां वों जीवे
खुल विच उस सुवास वहे ॥५१॥

हम पेड़-पेड़, डाल-डालपर फुदकते रहें। ध्रेक* के कड़ुवे फल खाकर ही हम जी लेंगे। वन, पर्वत, मरुस्थल--कहींपर भी रह लेंगे। आजादीका जो अधिकार हम सबको दिया है, वह सदा बना रहे। तेरे सहारे हमारी आन-शान कायम रहे। ऐ भगवन्! तुम्हारे प्रेमकी कैदके बिना हमें कोई दूसरी कैद न देखनी पड़े। जो बन्दी बनाकर देवताओंके दर्शन कराते हैं, पिंजरेमें डालकर मलीदेका प्रलोभन देते हैं, ऐसे दानवीर हमें नहीं चाहिए। ऐसे धर्मात्मा-पुरुषोंकी संगतिसे हम दूर ही भले हैं, जो हमारे पंख, पैर और हृदयको गतिविहीन बना दें और गलेमें रस्सी डालकर हाथमें लगाम पकड़ लें। किसी रखवालेकी सहायताके बगैर खुले आकाशकी उड़ान भरते, मौजसे घूमते भले ही बिल्ली या बाजका शिकार बन जाएँ। हमारे सारे कुलका नाश हो जाए। जब तक हममेंसे एक भी जीवित है, स्वतन्त्रताकी साँस लेता रहे ॥५१॥

---

* ध्रेक के पेड़ केवल पञ्जाबके ही कुछ मध्यवर्ती जिलोंमें पाये जाते हैं। अन्य भारतीयोंके लिए यह एक अपरिचित वृक्ष है।

इक अरदास होर है, साईयां ।
मेहर करीं दे कन्न सुणी,
पशु असी हाँ पशु रखावीं
बेशक सखणे सभन गुणीं ।
उह ना अकल असानूं देवीं
उह तहजीब दिवावीं नां ।
उह सभ्यता दूर रहावीं,
विद्या उह सिखावीं नां ।
जाल पाण ते घड़न पिंजरे,
कैद पाण सिखलावे जो,
खम्ब तोड़ कर बोट बहावे,
दूजिया बन्दी पावे जो,
लोक गुलाम बनाय बहाले,
सुरतां कतल करावे जो ।
तेरे रचे सुतंतर बन्दे,
परदे ताण सुटावे जो ।
खुल हरन दी जाच असानूं,
साईयाँ कदे सिखाई नां ।
पशु असां नं चाहे रखीं,
मानुख कदे बनाई नां ।
चहे जंगली चहे पशु रख,
दाने चाहे बनाई नां ।
'खुल वेचण' दी अकल ना देवीं,
'खुल खोहण' जाच सिखाई नां ।
'खुल रखण' दी गैरत देवीं
'खुल खुहणों' शर्म दिवावीं तू ।

एक प्रार्थना और है प्रियतम ! हम पशु हैं। पशु ही रहें, गुणहीन ही भले। हम उस शिक्षाके गुण कभी ग्रहण न करें, उस सभ्यतासे दूर रहें, जो जाल फैलाकर पिंजरेका बन्दी बनाना सिखाती है। पंख नोचकर जो दूसरोंकी स्वतन्त्रता छीनती है। लोगोंको पराधीन बनाकर बैठा देती है। तेरे पैदा किए स्वतन्त्र मनुष्योंको जो पराये वशमें कर देती है। किसीकी स्वतन्त्रताको छीनना हम कभी न सीखें, भले ही जंगली कहलाएँ, मनुष्य कभी न बन सकें। 'स्वतन्त्रता बेचने' की बुद्धि नहीं चाहिए। 'स्वतन्त्रता छीनने' के ढंग न सीखें। स्वतन्त्र रहनेकी आन और स्वतन्त्रताकी लाज आँखोंमें बनी रहे।

'खुल लइये, खुल दान कराइये,
'खुल दे दास बनावीं तूं।
मच्च मरे ना कदे असाडा,
गच्च कदे दिल खावे नां।
खुशी रहे मन भरी असाडे
कच्च कदे सिर आवे नां।
गैरत ठरन खून ना देवे,
अणख रगां खिच रसे जी।
भुजा साडियां ताण लाज रहे,
अख उचेरी तक्के जी।
मोढे तणे ताण विच सिधे,
गरदन आकड़ भरी रहे।
ज़ोर रहे हिक साडी भरिमा
डर खा धौन ना कदे ढहे।।५२।।

———

खुले हाथों हम स्वतन्त्रता बाँटें, दास कभी न बनें। हमारे भीतरकी चिनगारी सदा सुलगती रहे। कभी साहस न छोड़ें। सदा प्रफुल्ल मन रहें, कभी कोई संकट न आए। खूनको आन सदा गरमाए रखें। नसोंमें आन भरी रहे। बाजू तानकर हम आँख उठाकर देख सकें। कन्धोंका तनाव कभी ढीला न हो। गर्दन सीधी तनी रहे। हमारे सीने और भुजाओंमें शक्ति बनी रहे। भयभीत हो हम कभी गर्दन न झुकाएँ। ॥५२॥